दूसरा अध्याय

सामाजिक-जीवन

परिच्छेद १

वर्ण एवं जाति

[क] वर्ण-विभाजन

"शार्दूलकर्णावदान" में पुष्करसारी ब्राह्मण चार वर्णों का उल्लेख करता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वह कहता है कि ब्राह्मण से ही यह समस्त लोक प्रादुर्भूत हुआ है। ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए उन के औरस पुत्र हैं। उर एवं बाहु से क्षत्रिय, नाभि से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं।

"तस्य ज्येष्ठा वयं पुत्राः क्षत्रियास्तदनन्तरम्।
वैश्यास्तृतीयका 'वर्णाः शूद्रनाम्ना चतुर्थकः॥"[1]

पुष्करसारी ब्राह्मण मातंगराज त्रिशंकु से कहता है—

"स त्वं वृषल चतुर्थेऽपि वर्णे न संदृश्यते अहं चाग्रे वर्णे श्रेष्ठे वर्णे परमे वर्णे प्रवरे वर्णे"।[2]

इससे स्पष्ट है कि चाण्डालों की गणना इन चार वर्णों में न थी। उन का इन चार वर्णों से पृथक ही पंचम वर्ण था। इन्हें हीन योनि का बतलाया गया है। इस प्रकार सामाजिक वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण शीर्षस्थानीय थे। इन के अनन्तर क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र आते थे। इन सब के पश्चात् सब से निम्न कोटि चाण्डालों की थी।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२३।
२. वही, ३२३।

अपने पुत्र शार्दूलकर्ण के लिए मातंगराज त्रिशंकु के द्वारा पुष्करसारी ब्राह्मण से दुहिता-याचना किये जाने पर वह क्रोध से भभक उठता है और कहता है—

"धिग् ग्राम्यविषय चण्डाल, नेदं श्वपाकवचनं युक्तम्,
यस्त्वं ब्राह्मण वेदपारगं हीनश्चण्डालयोनिजो भूत्वा इच्छस्यवमर्दितुम् ।"[1]

तू चाण्डाल योनि का है और मैं द्विजाति में उत्पन्न हुआ हूँ । ऐ मूढ तू हीन का श्रेष्ठ से सम्बन्ध कैसे स्थापित करना चाहता है? श्रेष्ठ का श्रेष्ठ के साथ ही संबन्ध होता है, न कि हीन व्यक्ति के साथ । इस अप्रार्थनीय सम्बन्ध की याचना कर निश्चय ही तू वायु को पाशबद्ध करना चाहता है । एक जाति का व्यक्ति अपनी जाति मे ही विवाहादि सम्बन्ध रखता है, अन्य जाति मे नही । ब्राह्मण-ब्राह्मणो के साथ, क्षत्रिय-क्षत्रियों के साथ, वैश्य-वैश्यों के साथ और शूद्र-शूद्रो के साथ सवन्ध रखता है । इसी प्रकार चाण्डाल चाण्डालो के साथ और पुक्कस-पुक्कसो के साथ सवन्ध रखते है । एक जाति का व्यक्ति अपने सदृश जाति वाले के साथ ही विवाहादि संबन्ध रखता है, न कि चाण्डाल ब्राह्मणो के साथ ।

पुष्करसारी, चाण्डाल को सर्वजाति विहीन, सर्ववर्ग जुगुप्सित, कृपण और पुरुषाधम कहता है ।[2]

"रामायण" मे भी चाण्डालो की गणना समाज की सर्वाधिक उपेक्षित जाति मे की गई है ।[3]

इस अवदान से यह स्पष्टरूप में परिज्ञात होता है कि समाज मे ऊँच-नीच का भेद-भाव एवं अस्पृश्यता की भावना इतनी अधिक थी कि जाति और कुल के न पूछे जाने पर भी प्रकृति आनन्द द्वारा जल याचना किये जाने पर सहसा कह उठती है—

"मातङ्गदारिकाहमस्मि भदन्त आनन्द" ।[4]

[ख] कर्मणा वर्ण-व्यवस्था न जन्मना

उपर्युक्त वर्ण व्यवस्था जन्म के आधार पर थी, उस में कर्म का कोई भी

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२० ।
२. शार्दूलकर्णावदान पृ० ३२१
३ "योनीनां अधमा वयम्"
४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४ ।

स्थान नहीं था। भगवान् बुद्ध ने इस जन्मना वर्ण व्यवस्था का खण्डन किया। उन की दृष्टि में जन्म से ही केवल कोई ब्राह्मण या शूद्र नही होता, प्रत्युत् कर्मों के अनुसार ही कोई व्यक्ति ब्राह्मण या शूद्र कहा जाता है।

मातंगराज त्रिशंकु और पुष्करसारी ब्राह्मण का वार्तालाप यह स्पष्ट करता है कि किसी व्यक्ति का ब्राह्मणत्व किस पर—उस के कर्म पर अथवा जन्म पर—निर्भर करेगा? इस अवदान के अन्त मे भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा है—

"स्याद् भिक्षवो युष्माकं काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा—अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन त्रिशङ्कुर्नाम मातङ्गराजोऽभूत्? नैवं द्रष्टव्यम्। अहमेव स तेन कालेन तेन समयेन त्रिशङ्कुर्नाम मातङ्गराजोऽभूवम्।"[1]

इस से यह निश्चित हो जाता है कि मातंगराज त्रिशकु के वचन स्वयं भगवान् बुद्ध के ही अपने विचार है।

उन के अनुसार भस्म और सुवर्ण तथा अन्धकार और प्रकाश मे जैसी विशेषता उपलब्ध होती है, वैसी ब्राह्मण और अन्य जाति मे नही। ब्राह्मण न तो आकाश अथवा मरुत् से उत्पन्न हुआ है और न अरणि के मन्थन से उत्पन्न हुई अग्नि के समान पृथ्वी को भेद कर उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण भी माता की योनि से जन्म लेता है और चाण्डाल भी। फिर उन के श्रेष्ठत्व और वृषलत्व में क्या कारण है? जिस प्रकार ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात् जुगुप्सा एवं अशुचि का पात्र समझा जाता है, उसी प्रकार अन्य वर्ण भी समझे जाते है। सभी मनुष्यो में पैर, जाघ, नख, मास, पार्श्व, और पृष्ठ समान रूप से रहते है, ऐसा कोई भी विशेष अंश उपलब्ध नही होता, जिस के आधार पर चतुर्वर्णों का पृथक्-पृथक् विभाजन किया जा सके। जिस प्रकार क्रीडा करता हुआ बालक पांशु-पुंज को स्वय ही भिन्न-भिन्न नाम देता है, यथा यह क्षीर है, यह दधि है, यह मांस है, यह घृत है आदि आदि, परन्तु बालक के कथन मात्र से ही वह उन-उन वस्तुओ मे परिणत नही हो जाता, उसी प्रकार ब्राह्मण के कहने मात्र से ही इन चारो वर्णों का पृथक्-पृथक् विभाग नही हो जाता। जिस प्रकार ब्राह्मण अपने सत् या असत् कर्मों के फल-स्वरूप स्वर्ग या नरक मे जाता है, उसी प्रकार अन्य वर्ण भी।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४।

जिस प्रकार अण्डज, जरायुज, संस्वेदज एवं औपपादुकों मे पैर, मुख, वर्ण संस्थान, आहार आदि के कारण नानात्व के दर्शन होते हैं, उस प्रकार का भेद इन चार वर्णों मे दृष्टिगोचर नही होता।

जिस प्रकार स्थलज वृक्ष—तमाल, कर्णिकार, शिरीपादि; क्षीर वृक्ष—उदुम्बरादि; फलभैपज्य वाले वृक्ष—आमलकी, हरीतकी आदि; और स्थलज पुष्प वृक्ष—चम्पकादि; तथा जलज पुष्प वृक्ष—पद्मोत्पलादि में मूल, स्कन्ध, पत्र, पुष्प, फल,रूप, गन्ध वर्ण आदि के कारण नानाकरण प्राप्त होता है, वैसा चारो वर्णो मे नही।

मातंगराज त्रिशंकु पुष्करसारी ब्राह्मण से कहता है कि यदि अनुमान को प्रमाण मानते हो तो भी तुम्हारे कहने के अनुसार ब्रह्मा के एक होने से उनकी प्रजा भी एक जाति की होगी।

ये समस्त प्राणी ब्रह्मा से नही उत्पन्न होते, अपितु अपने-अपने कर्मों के फलस्वरूप ही जन्म ग्रहण करते है तथा अपने निम्नोच्च कर्मों के कारण ही वे ब्राह्मण अथवा शूद्र कहे जाते है। महर्षि द्वैपायन का जन्म एक विपादी [धीवर की लड़की] के गर्भ से हुआ था। वह उग्र, तेजस्वी तथा तपस्वी थे। ब्राह्मणी पुत्र न होने पर भी वह ब्राह्मण कहलाये। परशुराम क्षत्रिया रेणुका के गर्भ से उत्पन्न हो कर भी पण्डित, विनीत, एव सर्वशास्त्रविशारद होने के कारण ब्राह्मण कहलाये।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने जन्म का विरोध कर कर्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था को माना। वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप जन्मना न होकर, कर्मणा स्वीकार किया। जो भी मनुष्य तेजस्वी, तपस्वी, पण्डित, विनीत एव सदाचरण संपन्न होगा, वह ब्राह्मण पद का अधिकारी है। जिस प्रकार अधर्माचरण-रत ब्राह्मण जुगुप्सा का पात्र समझा जाता है, उसी प्रकार धर्मानुष्ठानो के फलस्वरूप चाण्डाल अजुगुप्सनीय होते है।

धर्मेण हि चण्डाला अजुगुप्सनीया भवन्ति।"[1]

यदि उच्च कुलीन जनो मे दोष का आविर्भाव गर्हा का कारण होता है, तो नीच जनो मे भी गुण-योग समुचित सत्कार का कारण होना चाहिए।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३१।

मनुष्य के कर्मानुसार ही उन को ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विभिन्न संज्ञाएँ दी गई है। वस्तुतः सब एक ही है।

"एकमिदं सर्वमिदमेकम्।"[१]

जो लोग शालि-क्षेत्रो का वपन करते हैं, उनकी रक्षा करते हैं, उनकी क्षत्रिय संज्ञा है।[२]

दूसरे लोग जो परिग्रह को रोग, गण्ड और शल्य समझकर उस का त्याग कर वन मे तृण, काष्ठ, शाखा, पत्र, पलाशो को एकत्र कर तृण-कुटिका अथवा पर्ण-कुटिका का निर्माण कर उस मे निवास करते हुए ध्यान मग्न रहते है और प्रातः काल पिण्डार्थ ग्राम मे जाते है, उन का ग्राम-वासी विशेष सत्कार करते है, और उन्हें दान देते है। स्वकीय परिग्रह का त्याग कर ग्राम-निगम-जनपद से बाहर जाने के कारण इन की बहिर्मनस्क ब्राह्मण सज्ञा हुई।[३]

कुछ ऐसे थे, जो ध्यानादि का अनुष्ठान न कर ग्रामों में जाकर मत्रों को पढ़ाते थे। ग्राम वासियो ने इन को अध्यापक कहा।[४]

कुछ ऐसे व्यक्ति जो नाना-विध अर्थोपार्जन मे दत्तचित रहते थे, उन को वैश्य कहा गया।[५]

ऐसे व्यक्ति जो निम्न प्रकार के कर्मों द्वारा अपनी जीविका चलाते थे, शूद्र कहलाये।[६]

खेती करने वालो को कृषक कहा गया।[७]

जो धर्म, शील, व्रत, सदाचरण तथा आभापणादि के द्वारा पर्षद् का अनुरजन करता था, वह राजा कहलाया।[८]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८।
२. वही, पृ० ३२८।
३ वही, पृ० ३२८।
४ वही, पृ० ३२९।
५. वही, पृ० ३२९।
६. वही, पृ० ३२९।
७. वही, पृ० ३२९।
८. वही, पृ० ३२९।

जो वाणिज्य व्यवसाय के द्वारा अपनी जीवका यापन करते थे, उन की वणिक् संज्ञा हुई ।[१]

अन्य व्यक्ति जो प्रव्रजित हो कर पर-पीड़ा हरण करते थे, उन को प्रव्रजित कहा गया ।[२]

इस प्रकार मनुष्य को उस के कर्म के अनुसार भिन्न-भिन्न सज्ञाए दी गई ।

"कुणालावदान" मे हम देखते है कि बुद्ध-शासन मे अत्यधिक प्रीति उत्पन्न होने के कारण राजा अशोक जहाँ कही भी शाक्यपुत्रियों को देख कर उन को शिरसा प्रणाम करता है । किन्तु यह बात उस के यश नामक अमात्य को नही रुचती । वह राजा से कहता है—

"देव, नार्हसि सर्ववर्णप्रव्रजितानां प्रणिपातं कर्तुम् । सन्ति हि शाक्यश्रामणेरकाश्चतुर्भ्यो वर्णेभ्यः प्रव्रजिता इति ।"[३]

उस समय राजा उस से कुछ नही कहते । किन्तु कुछ समय बाद वह सभी अमात्यो से भिन्न-भिन्न प्राणियो का शिर लाने को कहते है और यश को मनुष्य का शिर लाने का आदेश देते है । फिर उनसे उन शिरों को बेचने के लिए कहते है । अन्य प्राणियो का शिर तो लोग खरीद लेते है किन्तु मनुष्य के शिर का कोई ग्राहक नही मिलता । कारण पूछने पर यश कहता है—"जुगुप्सितत्वात्" । राजा उससे पूछता है कि क्या मेरा भी शिर जुगुप्सित है ? और उस के "एवमिति" कहने पर राजा कहता है—

"विनापि मूल्यैर्विजुगुप्सितत्वात्
प्रतिग्रहीता भुवि यस्य नास्ति ।
शिरस्तदासाद्य ममेह पुण्यं
यद्यर्जित किं विपरीतमत्र ।।"

तुम शाक्य भिक्षुओं की जाति को ही देखते हो, उन के आन्तरिक गुणो को नही । धार्मिक कार्यों मे गुण देखे जाते है, जाति का विचार नही किया जाता ।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२९ ।
२. वही, पृ० ३२९ ।
३ कुणालावदान, पृ० २४२ ।

"आवाहकालेऽथ विवाहकाले।
जातेः परीक्षा न तु धर्मकाले।
धर्मक्रियाया हि गुणा निमित्ता
गुणाश्च जातिं न विचारयन्ति॥"

चित्त की एकाग्रता के कारण ही मानव शरीर निन्द्य अथवा स्तुत्य होता है। जिस प्रकार गुण परिवर्जित द्विजाति की पतित कह कर अवज्ञा की जाती है, उसी प्रकार निर्धन एव नीचकुलोत्पन्न भी शुभ गुण युक्त प्राणी प्रणम्य है। सत्कार गुणो एव सदाचरणो के होते है, न कि जाति और कुल के। वह ऊँच और नीच की वैषम्य दृष्टि का खण्डन करते है।

"त्वग्मांसास्थिशिरायकृत्प्रभृतयो भावा हि तुल्या नृणाम्।"[1]

आनन्द के जल-याचना करने पर जब प्रकृति अपने को मातंगदारिका बतलाती है, तो वह कहते है—

"नाहं ते भगिनि कुलं वा जातिं वा पृच्छामि। अपि तु सचेन्ते परित्यक्तं पानीयम्, देहि, पास्यामि।"[2]

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने जाति प्रथा का विरोध कर मानव समानता के आदर्श का प्रतिपादन किया। क्या ब्राह्मण और क्या मातग; मानव होने के कारण सभी उन की दृष्टि मे एक थे। ये सभी सत्त्व ब्रह्मा के द्वारा नही उत्पन्न किये गये है, अपितु क्लेशज और कर्मज है तथा नाना कर्माश्रयो के कारण पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ते है।[3] वस्तुतः सब एक ही है।

[ग] ब्राह्मणो पर आक्षेप

प्राणि-वध का जो पाप कर्म है, वह ब्राह्मणो के द्वारा ही प्रकाशित किया गया है। मास-भक्षण की इच्छा रखने वाले ब्राह्मणो ने ही पशु-प्रोक्षण की कल्पना की। इन के अनुसार मन्त्रो से प्रोक्षित हो पशु स्वर्ग को जाते हैं। यदि स्वर्ग-गमन का यही मार्ग है तो फिर ये ब्राह्मण स्वय अपने को अथवा अपने माता-पिता, भ्राता, भगिनी, पुत्र, दुहिता, भार्या आदि को मन्त्रों द्वारा क्यों नही प्रोक्षित करते ? जिस से सभी को सद्गति की प्राप्ति हो।

---

१. कुणालावदान, पृ० २४२—२४४।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४।
३. वही, पृ० ३३२।

ब्राह्मणों ने, चार प्रकार के पाप ब्राह्मणों में बतलाये है—

सुवर्णचौर्यं मद्यं च गुरुदाराभिमर्दनम् ।
ब्रह्मघ्नता च चत्वार: पातका ब्राह्मणेष्वमी ।"[1]

स्वर्ण-हरण से बढ कर और कोई स्तेय नही है। स्वर्ण-हरण करने वाला विप्र अब्राह्मण कहलाता है। सुरापान को वर्ज्य बतलाया है और दूसरे अन्न पान का चाहे वे यथेष्टतः भक्षण करें। उस में कोई दोष नही। केवल गुरुदाराभिगमन का निषेध किया है, चाहे अन्य स्त्रियों मे वे यथेष्टतः प्रवृत्त हो। ब्राह्मण-वध की निन्दा की, किन्तु अन्य अनेक प्राणि-वध का कुछ भी विरोध न किया। उन की दृष्टि में ये पाप-कर्म न थे।

'इत्येते पातका ह्युक्ता ब्राह्मणेषु चतुर्विधाः ।
भवन्त्यब्रह्मणा येन ततोऽन्येऽपातकाः स्मृताः ॥[2]

इतना ही नही, उक्त चार पातको के करने से अब्राह्मणत्व को भी प्राप्त हुआ विप्र कुछ निश्चित व्रतानुष्ठान के पश्चात् पुनः ब्राह्मण पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

,'असौ द्वादशवर्षाणि धारयित्वा खराजिनम् ।
खट्वाङ्गमुच्छ्रित कृत्वा मृतशीर्षे च भोजनम् ॥
एतद्व्रतं समादाय निश्चयेन निरन्तरम् ।
पूर्णे द्वादशमे वर्षे पुनर्ब्राह्मणतां व्रजेत् ॥"[3]

ब्राह्मण वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध, शाम्यप्राश आदि यज्ञो का यजन करते हुए अनेक मत्रो का उच्चारण कर प्राणि-हिंसा करते है। किन्तु स्वर्ग-प्राप्ति का यह मार्ग नही है।

शील-रक्षा ही स्वर्ग-प्राप्ति का सच्चा मार्ग है।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२२।
२. वही, पृ० ३२२।
३. वही, पृ० ३२३।

"शीलं रक्षेत मेधावी प्रार्थयानः सुखत्रयम् ।
प्रशंसां वित्तलाभं च प्रेत्य स्वर्गे च मोदनम् ॥"[1]

स्वर्ग-गमन के आठ प्रकार बतलाये गये है —

'श्रद्धा शीलं तपस्त्यागः श्रुतिर्ज्ञानं दयेव च ।
दर्शनं सर्ववेदानां स्वर्गव्रतपदानि वै ॥'[2]

[घ] ब्राह्मण-पद की मान्यता

बुद्ध ने जाति-भेद को स्वीकार नही किया, किन्तु "ब्राह्मण" शब्द की प्रतिष्ठा को स्थिर रखा । फिर भी उसे जन्म से नही माना । उच्च गुण वाले को ही बुद्ध ने ब्राह्मण स्वीकार किया । जो उग्रतप, विनीत, व्रत एव शील मे सदा तत्पर रहते है तथा अहिसा, दम और सयम मे सदा रत है, वे ही ब्राह्मण कहलाते है तथा वे ब्रह्मपुर में जाते है ।

"ये ब्राह्मणा उग्रतपा विनीता
व्रतेन शीलेन सदा ह्युपेताः ।
अहिसका ये दमसंयमे रता-
स्ते ब्राह्मणा ब्रह्मपुरं व्रजन्ति ॥"[3]

o

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३० ।
२. वही, पृ० ३३१
३. वही, पृ० ३२७

परिच्छेद २

आश्रम-व्यवस्था

रामायण-काल मे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चार आश्रमो की प्रतिष्ठा हो चुकी थी।[1] वेदो में ब्रह्मचर्य का स्थान वहुत ऊँचा है। बुद्ध की शिक्षाओ मे भी ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। ब्रह्मचारी स्त्री-सम्पर्क से सर्वथा दूर रहता था। राजा वासव के द्वारा पंच महाप्रदान अर्पित किये जाने पर माणवक सुमति उन में से चार को ग्रहण करता है किन्तु एक सर्वालङ्कारविभूपिता कन्या का परित्याग कर देता है और कहता है—"अहं ब्रह्मचारी"।[2]

वौद्धो ने गृहस्थ-जीवन को कोई विशेष महत्त्व नही दिया। वे गृहस्थाश्रम को आत्मवोधि मे एक प्रवल अन्तराय समझते थे। गृहस्थाश्रम का मोह प्रव्रज्या-ग्रहण मे वाधक होता था। गुप्त गान्धिक स्थविर से कहता है—

"आर्य, अह तावद्गृहवासे परिगृद्धो विषयाभिरतश्च। न मया शक्यं प्रव्रजितुं। अपितु योऽस्माक पुत्रो भवति, त वयमार्यस्य पश्चाच्छ्रमणं दास्यामः"।[3]

इस प्रकार रामायण मे प्रतिष्ठित गृहस्थाश्रम की सर्वोत्कृष्ट महिमा[4] इस काल मे सर्वथा विलुप्त हो गई।

वौद्ध-धर्म मे वानप्रस्थ-आश्रम का कोई भी उल्लेख नही प्राप्त होता।

---

१. रामायण २।१००।६२

२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।

३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१७।

४. "चतुर्णामाश्रमाणा हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्। २।१०६।२२

बौद्ध-धर्म में वानप्रस्थ आश्रम की कोई अपेक्षा नही । ये सीधे भिक्षु बन सकते थे । सार्थवाह पूर्ण विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार न कर प्रव्रज्या-ग्रहण करता है ।[1] माणवक ब्रह्मप्रभ भी विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा कर प्रव्रज्या-ग्रहण करता है ।[2]

O

---

१. पूर्णावदान, पृ० २१ ।
२. रूपावत्यवदान, पृ० ३११ ।

परिच्छद ३

संस्कार

जिन षोडश-संस्कारों की गणना ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्राप्त होती है, वे बौद्ध-साहित्य में नही उपलब्ध होते। तथापि उन में से कुछ का उल्लेख हुआ है। किन्तु उन का वह प्राचीन स्वरूप यहाँ नही प्राप्त होता जो हमें ब्राह्मण-साहित्य मे दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध-काल में "संस्कार" का आशय किसी "लौकिक व्यवहार' से होता था, जिस मे न तो यज्ञ यागादि किसी धार्मिक कृत्य के अनुष्ठान की आवश्यकता होती थी और न उन कृत्यो के सम्पादन करने वाले किसी पुरोहितादि की ही।

नीचे "दिव्यावदान" मे प्राप्त होने वाले कुछ संस्कारों का परिचय दिया जाता है।

[१] गर्भाधान-संस्कार

'दिव्यावदान' मे गर्भ-स्थापन की क्रिया एक संस्कार के रूप मे प्रतिष्ठित नही प्राप्त होती है। इसका स्वरूप पति-पत्नी के रमण-परिचरण द्वारा प्रादुर्भूत होने वाले एक सहज व्यापार के रूप मे प्राप्त होता है। इस संबन्ध मे विभिन्न स्थलो पर समान रूप से यह अश उपलब्ध होता है—

"स तया सार्धं क्रीडते रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रमतः परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता"। [1]

आपन्नसत्त्वा स्त्रियो के आहार-विहार मे विशेष सावधानी रखी जाती थी। उन्हें वैद्यो द्वारा निर्दिष्ट ऐसे आहार दिये जाते थे, जो अति तिक्त, अम्ल,

---

१. पूर्णावदान, पृ० १५।, स्वागतावदान, पृ० १०४।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १६२।, संघरक्षितावदान, पृ० २०४।

लवण, मधुर, कटु एवं कषाय न होते थे । गर्भ-परिपुष्टि-काल पर्यन्त वे किंचिदपि अमनोज्ञ शब्द-श्रवण नही करती थीं ।[1]

[२] जातकर्म अथवा जातिमह-संस्कार

आठ या नव महीने व्यतीत होने पर बालक या बालिका का जन्म होता था ।[2] सन्तान के उत्पन्न होने पर राजा तथा अन्य सम्पन्न गृहपति इक्कीस दिनों तक विस्तार के साथ जातकर्म [जातिमह] संस्कार करते है । वे नगर को पाषाण, शर्कर, बालुकादि से रहित कर चन्दन-वारि-सिक्त कर देते है । नगर में ध्वज-पताकाएँ फहराती है, सुरभिधूपघटिका रखी जाती है तथा नानाविध पुष्प बिखेर दिये जाते है। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, और याचको को दान भी दिया जाता है। राजा सर्व बन्धनो को उन्मुक्त कर देते है ।[3]

[३] नामकरण-संस्कार

सविस्तार जातकर्म के पश्चात् शिशु का नाम रखा जाता था । ये नाम सर्वथा कुल के अनुरूप होते थे । नाम खूब सोच समझ कर विचार पूर्वक रखे जाते थे । बिना विचार किये हुए उलटा सीधा जो जी मे आया, ऐसे नामकरण का विधान न था ।[4] गृहपति बलसेन के पुत्र का नाम "श्रोण कोटिकर्ण" उस के श्रवण नक्षत्र में उत्पन्न होने तथा कोटि मूल्यो वाली रत्न-जटित आमुक्ता (कर्णाभूषण) के साथ उत्पन्न होने के कारण रखा जाता है ।[5] ५०० वणिक् पुत्रो का नाम कुल के अनुरूप ही रखा जाता है ।[6] नाम

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० १ ।, स्वागतावदान, पृ० १०४ ।, सुधनकुमारावदान पृ० २८६ ।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० १५ । स्वागतावदान पृ० १०४ । संघरक्षितावदान, पृ० २०४ ।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० १६ ।, स्वागतावदान पृ० १०४ । सुधनकुमारावदान, पृ० २८६,८७ ।
४. स्वागतावदान, पृ० १०५ । संघरक्षितावदान, पृ० २०४ ।, सुधनकुमारा-वदान, पृ० २८७ ।
५. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।
६. संघरक्षितावदान, पृ २०४—२०५ ।

सार्थक भी होते थे।[१] इससे वृहस्पति कथित नामकरण की महत्ता द्योतित होती है।[२]

[४] विद्यारम्भ अथवा वेदारम्भ-संस्कार

इस संस्कार का कोई विशेष उल्लेख नही प्राप्त होता । परन्तु यह ज्ञात होता है कि वड़े होने पर वालक अनेक प्रकार की शिक्षा प्राप्त करता था।[३]

[५] विवाह-संस्कार

अध्ययन समाप्त कर लेने और वालक के वयस्क हो जाने पर उनका विवाह होता था। शार्दूलकर्ण जव पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर "चीर्णव्रत" तथा सभी ब्राह्मण-मंत्रो एवं वेदादि शास्त्रो मे पारगत हो जाता है, तव मातंगतराज त्रिशकु यह सोचता है "समयोऽय यन्न्वहमस्य निवेशनधर्मं करिष्ये।"[४] किन्तु यदि वह विवाह न कर सर्वजनहिताय एव सर्वजनसुखाय तपस्या करने की इच्छा प्रकट करता था, तो उसके माता-पिता तदर्थ अपनी अनुमति प्रदान कर देते थे। ब्रह्मप्रभ माणवक माता-पिता के द्वारा विवाह-प्रस्ताव किये जाने पर ऐसी ही इच्छा प्रकट करता है ।[५]

(क) विवाह एक लौकिक-व्यवहार

विवाह के लिए 'निवेश'[६] या "निवेशनधर्म"[७] शब्द प्रचलित थे । विवाह मे भी किसी धार्मिक विधि-विधान का अनुष्ठान नही होता था और न किसी पुरोहित आदि की ही आवश्यकता होती थी। यह एक प्रकार का लौकिक व्यवहार था।

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, स्वागतावदान, पृ० १०४।

२. "नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः,
शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्ति लभते मनुष्य-
स्ततः प्रशस्तं खलु नाम कर्म ॥"

३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।

४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।

५. रूपावत्यवदान, पृ० ३११।

६. पूर्णावदान, पृ० १६,२१। शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२५

७. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।

वर से शुल्क ले कर कन्या का विवाह करने की भी प्रथा थी। पुष्करसारी ब्राह्मण से अपने पुत्र शार्दूलकर्ण के लिए पत्नी के रूप मे उस की कन्या की याचना करते हुए मातगराज त्रिशंकु कहता है—

"यावन्तं कुलशुल्कं मन्यसे,तावन्तं दास्यामि"।[1]

ऐसे भी स्थल प्राप्त होते है, जब पिता अपनी सर्वालंकार-विभूषित कन्या का दान किसी योग्य व्यक्ति को करता है। वस्त्राभरणो से सुसज्जित कन्या का सव्य-पाणि से ग्रहण कर तथा सव्येतर पाणि में भृङ्गार (जलपात्र) को धारण कर पिता उसे भार्यार्थ वर को प्रदान करता था। इस मे प्राचीन प्राजापत्य-विवाह का आभास प्राप्त होता है। पुष्करसारी ब्राह्मण कहता है—

"ददामि तेऽहं प्रकृतिं ममामलां
शीलेन रूपेण गुणैरुपेतः।
शार्दूलकर्णः प्रकृतिश्च भद्रा
उभौ रमेतां रुचितं ममेदम्॥

प्रगृह्य भृङ्गारमुदकप्रपूर्ण-
मावर्जितो ब्राह्मणो हृष्टचित्तः।
अनुप्रदासीदुदकेन कन्यकां
शार्दूलकर्णस्य इयमस्तु भार्या॥"[2]

(ख) स्वयंवर-प्रथा

इसमें पूर्व निर्धारित शर्तो को पूरा करने वाला कन्या के पाणिग्रहण का अधिकारी होता है। "माकन्दिकावदान" मे एक ऐसे लोहार (अयस्कार) की कथा प्राप्त होती है, जो कहता है "मैं अपनी पुत्री को कुल, रूप अथवा धन की दृष्टि से किसी को नही दूँगा, अपितु जो मेरे शिल्प के समान शिल्प वाला या इससे भी अधिक होगा, उसे प्रदान करूँगा"।[3] इसी प्रकार माकन्दिक रूपोपपन्न, सर्वांग सुन्दरी अपनी कन्या के प्रति कहता है[4]—

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२०।
२. वही, पृ० ४२४।
३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५०।
४. वही, पृ० ४४६।

"इयं दारिका न मया कस्यचित् कुलेन दातव्या न धनेन नापि श्रुतेन, किं तु योऽस्या रूपेण समो वाप्यधिको वा, तस्य मया दातव्येति'।"

(ग) समुचित कुल में विवाह

उक्त सन्दर्भों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय कन्या का पाणिग्रहण कुल, धन, रूप, विद्या आदि दृष्टियों से सुविचारित व्यक्ति के साथ ही किया जाता था। विवाह सदृश कुल मे ही होते थे। इसका ज्ञान कई स्थलो पर प्राप्त होने वाले इस वाक्य से होता है—"तेन सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम्।"

"स्वागतावदान" में अपनी पुत्री के लिये अनेक याचनकों के आने पर बोध गृहपति की उद्घोषणा से भी कन्या का विवाह कुल और शील के अनुरूप किये जाने का ज्ञान प्राप्त होता है।[1]

(घ) अन्तर्जातीय-विवाह

परन्तु इसके विपरीत अन्तर्जातीय-विवाह का भी प्रचलन था। शार्दूलकर्ण और प्रकृति का विवाह प्रतिलोम-विवाह का उदाहरण है, जिसमे एक निम्न जाति का व्यक्ति उच्च वर्ण की स्त्री के साथ विवाह करता है।[2] क्षत्रिय राजा बिन्दुसार का ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह होना भी इसका दृष्टान्त है।[3]

(ङ) पत्न्यर्थ कन्या-याचना

किसी रूपिणी कन्या की अतुल सौन्दर्य राशि का गुण-गान सुन कर उसे पत्न्यर्थ प्राप्त करने के इच्छुक उसके पिता के पास याचनक भेजते थे, जो विवाह के लिये कन्या की याचना करता था। "स्वागतावदान" मे बोध गृहपति की एक ऐसी ही रूपयौवनसम्पन्न विशालकुल-सम्भूत दुहिता को अपनी भार्या रूप मे ग्रहण करने के लिए नानादेश-निवासी राजपुत्र, अमात्यपुत्र गृहपति-पुत्र, धनिक, श्रेष्ठिपुत्र और सार्थवाह-पुत्र याचनको को प्रेषित करते

---

१. स्वागतावदान, पृ० १०४।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२४।
३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३।

हैं।[1] वोघ गृहपति स्वयं किसी के पास अपनी पुत्री के विवाह के लिए नहीं जाता, प्रत्युत् उसको विवाह में प्राप्त करने के अभिलाषी स्वतः उसके पास याचनकों द्वारा प्रार्थना भेजते थे।

कन्या की याचना उसके पिता से करने का उदाहरण रामायण में भी उपलब्ध होता है, जब सीता से विवाह के इच्छुक राजगण महाराज जनक के समक्ष अपना प्रस्ताव रखते थे।[2]

(च) कन्या द्वारा स्वतः प्रस्ताव

ऐसा भी स्थल दृष्टिगोचर होता है, जहाँ कन्या स्वतः अभीप्सित व्यक्ति के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव माता-पिता के सम्मुख रखती है। प्रकृति आनन्द के प्रति आसक्त हो अपनी माता से कहती है कि वह आनन्द को स्वामी के रूप मे प्राप्त करेगी; अन्यथा अपने जीवन का परित्याग कर देगी।[3]

(छ) विवाह के लिए माता-पिता की अनुमति की अपेक्षा

किन्तु इतना स्पष्ट है कि कन्या स्वतः जिस किसी के साथ विवाह करने के लिए स्वतत्र न थी। तदर्थ उसे माता-पिता की अनुमति की अपेक्षा होती थी। प्रकृति के यह कहने पर कि मैं आनन्द को अपना स्वामी चाहती हूं। भगवान् बुद्ध पूछते है—"अनुज्ञातासि प्रकृते मातापितृभ्यामानन्दाय"।[4]

(ज) बहुपत्नी-प्रथा

बहुपत्नी-प्रथा का समाज में प्रचलन था। राजा तथा समाज के अन्य समृद्धिशाली व्यक्ति अनेक पत्नियों को रखते थे। "माकन्दिकावदान" मे राजा उदयन की दो पत्नियाँ श्यामावती और अनुपमा थी। इनके अतिरिक्त उसके अन्तःपुर मे ५०० अन्य स्त्रियो का भी उल्लेख है।[5] "कनकवर्णावदान" में

---

१. स्वागतावदान, पृ० १०४।
२. १।६६।१५—१६
३. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४।
४. वही, पृ० ३१६।
५. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५—५७।

महाधनी एवं महाभोगी राजा कनकवर्ण के अन्तःपुर में बीस हजार स्त्रियाँ थी।[१]

परन्तु बहुपत्नी-प्रथा के प्रचलित होने पर भी एक पत्नी-व्रत का महान् आदर्श लुप्त नही हुआ था। "सुधनकुमारावदान" मे अत्यन्त सम्पन्न परिवार का होने पर भी राजकुमार सुधन का प्रेम एकनिष्ठ है।[२]

(झ) विवाह की आयु

अध्ययन समाप्त कर लेने और बालक के वयस्क हो जाने पर उसका विवाह होता था। एक स्थल पर कहा गया है कि जब ब्रह्मप्रभ माणवक १६ वर्ष की अवस्था का हुआ तो उसके माता-पिता उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं।[३]

बाल-विवाह का उदाहरण कही भी उपलब्ध नही होता। विवाह पूर्ण युवावस्था मे ही सम्पन्न होते थे। कन्या के युवती हो जाने पर ही उसका गुण-श्रवण कर याचनक गण आते थे—

"यदा महती संवृत्ता, तदा रूपिणी यौवनानुरूपया आचारविहारचेष्टया देवकन्येव तद्गृहमवभासमाना सुहृत्सम्बन्धिबान्धवानामन्तर्जनस्य च प्रीतिमुत्पादयति। तस्यास्तादृशीं विभूतिं श्रुत्वा नानादेशनिवासिराजपुत्रा······भार्यार्थं याचनकान् प्रेषयन्ति।"[४]

"स्वागतावदान" के इस अवतरण से यह स्पष्ट रूपेण परिज्ञात होता है कि विवाह के पूर्व कन्या यौवनानुरूप आचार, विहार, भ्रूभङ्ग-कटाक्षपातादि काम-चेष्टाओ मे सम्यक् प्रकारेण निष्णात हो चुकी रहती थी।

विभिन्न स्थलो पर प्राप्त होने वाले—"तेन सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण पत्नी आपन्नसत्त्वा सवृत्ता"[५]—इस अंश

१. कनकवर्णावदान, पृ० १८०।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।
३. रूपावत्यवदान, पृ० ३११।
४. स्वागतावदान, पृ० १०४।
५. पूर्णावदान, पृ० १५।

से यह भली प्रकार से प्रतिपादित होता है कि के समय कन्या एक अबोध वालिका नही रहती थी। उसके अङ्ग-प्रविकसित हो चुकते थे तथा वह पति के साथ रति-क्रीड़ा करने एवं रण करने के सर्वथा अनुरूप अवस्था को प्राप्त कर एक पूर्ण वयस्क के रूप मे प्रतिष्ठित रहती थी।

"रामायण" मे भी युवावस्था मे ही विवाहका प्रमाण प्राप्त होता है। सीता एवं उनकी अन्य बहिनें विवाह के बाद-अपने पतियों के साथ एकान्त में रमण करने लगी थी।[1]

(६) संयास-संस्कार

मनुष्य अपनी समस्त धन-राशि का दीन अनक्रपणो को दान कर[2] तथा पुत्र-कलत्र, राज्य, गृह आदि[3] सभी का परित्कर बुद्ध की शरण में जाता था और वे "एहि भिक्षो। चर ब्रह्मचर्यम्" रा उसे प्रव्रजित करते थे।[4] इस प्रकार वह संयास धारण करता था।

(७) अन्त्येष्टि या मृतक-संस्कार

"यजुर्वेद" के अनुसार शरीर का संस्कार भस्म्त है।[5] किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर लोग नील पीत लोहित च्छ वस्त्रो से शिविका अलकृत कर महान् सत्कार के साथ शव को श्मशाने ले जाते थे।[6] वहाँ सुगन्धित लकड़ियों की चिता वना कर शव को जल देते थे।[7] इस प्रकार

---

१. "रेमिरे मुदिताः सर्वे भर्तृभिर्मुदिता रहः (१७।१३)

२. कोटिकर्णावदान, पृ० ११।

३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२।

४. पूर्णावदान, पृ० २२।

५. "भस्मान्तं शरीरम्"

६. चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।

७. रुद्रायणावदान, पृ० ४६१।

परिच्छेद ४

आचार-विचार

किसी युग की सामाजिक-व्यवस्था मे तत्कालीन आचार-विचारो का यथेष्ट महत्त्व है।

[क] परिवार

परिवार के सदस्यो मे पति, पत्नी, पुत्र, स्नुषा (पुत्र-वधू) के साथ ही साथ दास एवं दासी की भी गणना की गई है।[1] भाई की स्त्री को "भ्रातुर्जाया"[2] तथा बड़े भाई की पत्नी को "ज्येष्ठभविका"[3] कहते थे। बड़े भाई को "ज्येष्ठतर" की संज्ञा दी जाती थी।[4]

[ख] संबोधन-प्रणाली

तत्कालीन संबोधन-प्रणाली के अन्तर्गत माता को "अम्ब"[5], पिता को "तात"[6] तथा पुत्र एव पुत्री को "पुत्र"[7] और "पुत्रि"[8] के नामों से सम्बोधित किया जाता था। पत्नी, पति को "आर्यपुत्र"[9]

---

१. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७७ ।, मेण्ढकावदान, पृ० ८३ ।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० ९,१०
३. पूर्णावदान, पृ० १८ ।
४. वही, पृ० १८ ।
५. कोटिकर्णावदान, पृ० ३,१० । नगरावलम्बिकावदान , पृ० ५५ ।, सहसोद्गतावदान, पृ० १९३ ।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५१ । इत्यादि
६. वही, पृ० २,१० ।, पूर्णावदान, पृ० १६ ।
७. वही, पृ० ३,४,११ । वही, पृ० १६ । नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५ ।, सहसोद्गतावदान, पृ० १९३ ।
८. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४, ३१५ । माकन्दिकावदान, पृ० ४५७ ।
९. कोटिकर्णावदान, पृ० १ ।, नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५ । सहसोद्गतावदान, पृ० १९३ ।, माकन्दिकावदान, पृ० १४५ ।

या "देव"[१] पद से संबोधित करती थी। पति, पत्नी के लिए "भद्रे"[२], "देवि"[३] या "प्रिये"[४] सबोधन का प्रयोग करता था। पुत्र-वधू के लिए "वधूके" शब्द का प्रयोग होता था।[५]

किसी भी स्त्री के लिए "भगिनि' शब्द का प्रयोग किया जाता था।[६] मित्र को "वयस्य"[७] या "प्रियवयस्य"[८] कहते थे। छोटे के लिए मित्रतापूर्ण सबोधन "भागिनेय"[९] और बड़े के लिए आदरसूचक सबोधन "मातुल"[१०] प्रचलित था।

ऋषियों और तपस्वियों को "भगवन्",[११] "महर्षे",[१२] "ऋषे"[१३] आदि नामों से सबोधित किया जाता था।

[ग] अभिवादन-प्रकार

अभिवादन या प्रणाम, माता-पिता[१४] या आदरणीय व्यक्ति[१५] को

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६ ।, रुद्रायणावदान, पृ० ४६८, ४७० ।
२. पूर्णावदान पृ० १७ । नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५ । सहसोद्गतावदान पृ० १८३ । माकन्दिकावदान, ४४६, ४४७ ।
३ कुणालावदान, पृ० २६४ । रुद्रायणावदान, पृ० ४७०
४. वही, पृ० २६७ ।
५. कोटिकर्णावदान, पृ० ८ ।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० ९ ।, रूपावत्यवदान, पृ० ३०७,३०८ । शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४ । माकन्दिकावदान, पृ० ४५३ ।
७. माकन्दिकावदान, पृ० ४५३ ।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७२ ।
८. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५ ।
९. चूडापक्षावदान, पृ० ४३६ ।
१०. वही, पृ० ४३६ ।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७ ।
१२. वही, पृ० २९२, २९७ ।
१३. वही, पृ० २९६ ।
१४. कोटिकर्णावदान, पृ० ३ ।
१५ वही, पृ० ११ ।

पैरों पर गिर कर शिरसा किया जाता था। पिता अपने पुत्र का आलिंगन कर [१] उसे आशीर्वाद देता था। मित्र आपस में मिल कर भी अभिवादन करते थे, जिसके लिए "कण्ठाश्लेष" शब्द प्रयुक्त होता था।[२] हाथ जोड़ कर भी प्रणाम किया जाता था।[३]

[घ] भाव-विशेष की अभिव्यक्ति

दुःखावेग मे स्त्रियाँ हाथो से अपनी छाती पीट लेती थी। मैत्रकन्यक के समुद्रावतरण करने के लिए जाने का समाचार सुन कर उस की माँ करुण-क्रन्दन करती हुई दोनो हाथो से प्रगाढ़ उर-ताडन करती है।[४] एक अन्य स्थल पर भविल-पत्नी पूर्ण को बच्चो के लिए पूर्वभक्षिका (नाश्ता) ले आने को भेजती है। मार्ग मे किसी पुरुष को गोशीर्षचन्दन ले जाते देख कर वह उस से उस काष्ठभार को भविल-पत्नी के पास ले जाने के लिए कहता है। भविल-पत्नी उस से यह सुन कर कि पूर्ण ने इस काष्ठ-भार को भेजा है, उरप्रहार कर कहती है कि यदि पूर्ण के पास धन नही है, तो क्या वह बुद्धि से भी भ्रष्ट हो गया है?[५]

चिन्तित होने की मुद्रा प्रायः "करे कपोल दत्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः" से अभिव्यक्त की गई है।[६]

विदाई के समय छोटे लोग अपने बडो की आज्ञा ले कर जाया करते थे। कोटिकर्ण महासमुद्रावतरण करने के लिए अपने पिता से आज्ञा लेता है।[७] "चूडापक्षावदान' मे गृहपति-पुत्र अपनी माता से समुद्रावतरण की अनुमति लेता है।[८]

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० १०।, कुणालावदान, पृ० २६८।
२. मैत्रेयावदान, पृ० ३६।
३. नगरावलम्बिकावदान, पृ०५३। मैत्रकन्यकावदान पृ० ५०४,५०७।
४. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६६।
५. पूर्णावदान, पृ० १६।
६. वही, पृ० १६,२६। मैत्रेयावदान, पृ० ३५।; नगरावलम्बिकावदान, पृ०५४। चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६७। सुधनकुमारावदान, पृ० २६१।
७. कोटिकर्णावदान, पृ० २।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३७।

[ङ] कृतज्ञता की भावना

समाज मे यदि कोई व्यक्ति किसी का उपकार कर देता था तो वह उसे विस्मृति-गर्त मे डाल कर कृतघ्नता का भाजन नही वनता था, वरन् उस के प्रति चिर कृतज्ञ रहता था । जव जन्मचित्रक नागपोतक को पकडने के लिए अहितुण्डिक जाता है तो वह आत्मत्राणार्थ हलक लुव्धक की शरण-ग्रहण करता है और उस के द्वारा रक्षा किये जाने पर वह नागपोतक उसे वर एव अनेक रत्न देता है । इतना ही नही ऋषि द्वारा निर्दिष्ट अमोघपाश को माँगने के लिए जव वह लुव्धक फिर जाता है, तव वह नागपोतक सोचता है "ममानेन वहूपकृतम्" और अमोघपाश उसे दे देता है । नागपोतक लुव्धक द्वारा किये गये उपकारो के लिए इन शव्दो मे आभार-प्रदर्शन करता है—

"त्वं मे माता, त्वं मे पिता, यन्मया त्वामागम्य मातापितृवियोगजं दुःखं नोत्पन्नम् ।"[१]

इसी प्रकार पत्नी तथा पुत्रा द्वारा उपेक्षित गृहपति प्रेष्यदारिका की सेवा से स्वस्थ होने पर सोचता है कि मैं केवल इसी के कारण जीवित रह सका हूँ । अतः इसका कुछ प्रत्युपकार करना चाहिये । तथा वह निम्नलिखित शव्दो मे आभार-प्रदर्शन करता है—

"दारिके, अहं पत्न्या पुत्रैश्चाप्युपेक्षितः । यत् किंचिदह जीवितः, सर्वं तव प्रभावात् । अह ते वरमनुप्रयच्छामीति ।"[२]

कृत-उपकारो के लिए आभार-प्रदर्शन का निदर्शन आदि काव्य रामायण मे भी प्राप्त होता है ।[३]

[च] जनगर्हणा

व्यक्ति को अपने सवन्धि-जन-मध्य से वहिष्कार एव जन-गर्हणा नही रुचती थी । गृहपति सुभद्र के एक सवन्धी को जव इस यथार्थ वात का ज्ञान

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८५ ।

२. पूर्णावदान, पृ० १५ ।

३. "प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्य च शाश्वतम् ।
त्वत्प्रसादान्महावाहो पुनः प्राप्तमिदं मया ॥ (४।३८।२५)

होता है कि गृहपति ने अपनी सत्त्ववती पत्नी की हत्या कर डाली है । किन्तु वह महानुभाव एवं महर्द्धिक सत्त्व अग्नि से भी न जला और राजकुल मे संवर्धित हो रहा है तो वह गृहपति सुभद्र से कहता है—

तद्गतमेतत् । यदि तावत्कुमारमानयसि, इत्येव कुशलम् । नो चेद्वयं त्वां ज्ञातिमध्यादुत्क्षिपामः । सलोकानां [सालोहितानां ?] सकारं पातयामः रथ्यावीथीचत्वरशृङ्गाटकेषु चावरणं निश्चारयाम —अस्माकं भगिनी सुभद्रेण गृहपतिना प्रघातिता । स्त्रीघातकोऽयम् । न केनचिदाभाषितव्यमिति । राजकुले च तेऽनर्थं कारयाम इति ।"

यह सुन कर गृहपति सुभद्र अति व्यथित हो जाता है और जा कर राजा विम्बिसार से याचना कर ज्योतिष्क कुमार को अपने साथ ले आता है ।[1]

[छ] विपत्ति में दूसरों की सहायता

दूसरे की विपत्ति सवेग उत्पन्न करने वाली होती है, ऐसा भगवान ने स्वयं कहा है— "परविपत्तिः संवेजनीयं स्थानमिति" ।[2] द्रष्टा के हृदय मे उस के प्रति करुणा उमड पड़ती है, उस के साथ उसका व्यवहार सहानुभूति-पूर्ण होता है । ऐसा भी दृश्य प्राप्त होता है जहाँ लोग दूसरे की विपत्ति मे परस्पर मिल कर हाथ बटाते थे । "सहसोद्गतावदान" में जब वणिक-जनो को यह ज्ञात होता है कि गृहपतिपुत्र हमारे साथ सहासमुद्रावतरण करने वाले एक वयस्य का पुत्र है, जिसकी महासमुद्रावतरण मे मृत्यु हो गई है तो वे कहते है—

"शक्यं बहुभिरेकः समुद्धर्तुम्, न त्वेव एकेन बहवः । तदयं पटकः प्रज्ञप्तो येन वो यत् परित्यक्तम् सोऽस्मिन् पटकेऽनुप्रयच्छत्विति'

और इस प्रकार मणि-मुक्तादि रत्नो की महान् राशि एकत्रित कर वे उसको प्रदान करते है ।[3]

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६८--१६६ ।

१. अशोकावदान, पृ० २८१ ।

३. सहसोद्गतावदान, पृ० १६० ।

[ज] अपने ही सुख में मग्न रहना

इसके विपरीत ऐसे समाज का भी चित्र उपलब्ध होता है, जिसमे प्राणी स्वकीय सुख-सम्पत्ति मे ही निरत रहता हुआ विपत्तिग्रस्त-जनो की करुण-गाथा के श्रवणार्थ किंचिदपि उन्मुख नही होता, प्रत्युत् विपत्ति-काल मे अपने भी सवन्धियो तक को भुला कर सर्वथा उन के प्रतिकूल हो जाता है। एक अवदान मे विपत्तिग्रस्त स्वागत की ऐसी ही एक मार्मिक-कथा का उल्लेख है, जहाँ "सपत्तिकामो लोको विपत्तिप्रतिकूल:" का निदर्शन प्राप्त होता है। विपत्ति काल मे स्वागत की कोई सहायता नही करता और सभी यह भुला देते है कि यह हमारा भी संवन्धी है। किन्तु भगवान् बुद्ध द्वारा गुणोद्भावना किये जाने पर कोई कहता है कि "यह मेरा भतीजा है", कोई "यह मेरा भागिनेय है" और कोई "यह मेरे वयस्य का पुत्र है"।[1]

(झ) आत्मघात के प्रचलित-साधन

अत्यधिक आत्मक्षोभ होने पर धर्मरुचि अग्निप्रवेश, जलप्रवेश अथवा तट-प्रपात करने का भी विचार करता है।[2] इससे यह प्रतीत होता है कि समाज मे आत्मघात के ये प्रचलित साधन रहे होगे। इसके अतिरिक्त शस्त्र द्वारा या विप खाकर या गले मे रस्सी वाँध कर या प्रपात से गिर कर भी प्राण त्याग किया जाता था।[3]

(ञ) पुत्र, पैतृक-धन का अधिकारी

समाज मे पुत्र पैतृक-वन का अधिकारी होता था। वणिक् श्रेष्ठी की मृत्यु हो जाने पर उसके सुहृद् वणिक् उस श्रेष्ठी के भाण्डस्य हिरण्य-सुवर्ण को उसके पुत्र को दे देते है और वह उस पैतृक धन को लेकर अपने घर जाता है—"स दारकस्तं भाण्ड हिरण्यसुवर्णं पैतृक गृह्य स्वगृहमनुप्राप्त:"।[4]

(ट) हर्ष-प्रदर्शन

किसी व्यक्ति पर प्रसन्न हो कर लोग उसे पुरस्कार दान भी देते थे, जिस

---

१. स्वागतावदान, पृ० ११६।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।
३ पूर्णावदान, पृ० २३।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५९।

के लिए "प्रसन्नाधिकार" शब्द व्यवहृत हुआ है। इस प्रकार के दान-ग्रहण का समर्थन भगवान बुद्ध ने भी किया है।

"यदि प्रसन्नाः प्रसन्नाधिकारं कुर्वन्ति, गृहाण।"[2]

राजागण अपना हर्ष कोई न कोई पुरस्कार[3] या वर[4] प्रदान कर ही प्रकट करते थे।

(ठ) नौकरों की प्रवृत्ति

नौकरो के थोड़ा काम करने—अल्प कार्य के लिए भी अधिक समय लगाने—की प्रवृत्ति का बोध होता है। अन्य भृतको की अपेक्षा गृहपति पुत्र (भृतक) अधिक शीघ्रता से कार्य करता दिखाई पड़ता है तथा अन्य भृतको की कामचोरी देख कर वह कहता है—

"वयं तावत् पूर्वकेण दुश्चरितेन दरिद्रगृहेषूपपन्नाः। तद्यदि शाठ्येन कर्म करिष्यामः, इतश्च्युतानां का गतिर्भविष्यति ?"[5]

(ड) उत्साह

अपनी अभीप्सा-सिद्ध्यर्थ प्राणी अपने अयोग्य एव कठोर श्रम करने के लिए सदा वद्ध परिकर रहता था। देवगति में जाने के लिए अनुरक्त चित्त गृहपति-पुत्र को जब बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन कराने के लिए पंचशत कार्षापण अपनी माता के पास प्राप्त नही होते, तो वह भृतिक-कर्म (मजदूरी) करने के लिए तत्पर होता है।[6] सुप्रिय सार्थवाह देवता द्वारा निर्दिष्ट वदरद्वीप के कष्टसाध्य मार्ग को सुन कर अपना उत्साह नही खो देता, अपितु अदम्य धैर्य एवं उत्साह के साथ अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख हुआ वदरद्वीप की यात्रा

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८, १९०, १९१।
२. वही, पृ० १९१।
३. स्तुतिब्राह्मणावदान, पृ० ४६।
४. पूर्णावदान, पृ० १५, १९।, कुणालावदान, पृ० २६४।, माकन्दिकावदान पृ० ४५६।
५. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
६. वही, पृ० १८७-१८८।

करता है।[1] इसी प्रकार राजकुमार सुधन ऋषि द्वारा मनोहरा-निर्दिष्ट विषम एवं दुर्गम मार्ग-श्रवण कर यथोपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करता हुआ अपने इष्ट स्थल तक पहुँच जाता है।[2]

(ढ) प्रजा की मनोवृत्ति

यदि किसी राजा के राज्य मे प्रजा को कष्ट होता तो वह उस राज्य को छोड़ कर अन्यत्र चली जाती थी, जिसके फलस्वरूप राजा प्रजा-जन को लौटा लाने के लिए अविलम्ब उपाय करता था। दक्षिणपाचाल राजा के अधर्म पूर्वक राज्य करने तथा क्रोधी एव कर्कश स्वभाव से सन्त्रस्त समस्त जनकाय राष्ट्र-परित्याग कर तदितर सद्धर्म-परायण उत्तर पाचाल राजा के राज्य मे चला जाता है। अमात्यो द्वारा कारण ज्ञात होने पर राजा उनसे ऐसा उपाय करने के लिए कहता है जिससे वे पुन. वहाँ आ कर रहने लगे।[3]

(ण) पूर्व-सूचना

राजमहल के प्रत्येक आगत-अभ्यागत को पहले द्वारपाल या दूत के द्वारा राजा के पास सूचना भेजनी पडती थी तथा उसकी अनुमति मिलने पर ही उसे प्रवेश मिलता था।[4]

[त] अतिथि-सत्कार

अतिथि--सत्कार, भारतीय-संस्कृति मे सामाजिक शिष्टाचार का अभिन्न अश है। स्वगृह मे ऋषि-आगमन अनुकम्पा का कारण समझा जाता था। राजा कनकवर्ण प्रत्येक-बुद्ध को आते हुए देखकर कहते हैं—

"ऋषिरेषोऽस्माकमनुकम्पयेहागच्छति"।[5]

ऋषि के स्वागतार्थ राजा अपने आसन से उठ कर कुछ आगे जाता था

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६४–६८।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २६६–२६८।
३. वही, पृ० २८३।
४. वीतशोकावदान, पृ० २७५।
५. कनकवर्णावदान, पृ० १८२।

और शिरसा प्रणाम कर उसे निर्दिष्ट आसन पर बैठाता था। तदनन्तर आगमन-प्रयोजन पूछ कर अविलम्ब तत्सम्पादनार्थ उद्यत हो जाता था।[१]

ऐसे कई उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि अभ्यागत के सम्मानार्थ कुछ आगे जा कर उसका स्वागत किया जाता था। राजा अशोक, स्थविर उपगुप्त के स्वागतार्थ नगर-शोभा एवं मार्ग-शोभा कर और सर्ववाद्य, सर्वपुष्प-गन्ध-माल्यादि लेकर समस्त पौर-जन एवं अमात्यगणो से परिवृत हो डेढ़ योजन आगे जा कर उन का स्वागत करते हैं।[२]

तत्कालीन राजागण बौद्धो के प्रति कितनी विनम्रता और सम्मान का भाव रखते थे तथा उन के आगमन पर किस हर्षातिरेक का अनुभव करते थे, इस का आभास स्थविर उपगुप्त के आगमन पर राजा अशोक के इन वचनो से प्राप्त होता है।

"यदा मया शत्रुगणान्निहत्य
प्राप्ता समुद्राभरणा सशैला।
एकातपत्रा पृथिवी तदा मे
प्रीतिर्न सा या स्थविरं निरीक्ष्य॥

त्वद्दर्शनान्मे द्विगुणः प्रसादः
संजायतेऽस्मिन् वरशासनाग्रे।
त्वद्दर्शनाच्चैव परेऽपि शुद्धया
दृष्टो मयाद्याप्रतिमः स्वयंभूः॥"[३]

आतिथ्य करने वाला इस बात का ध्यान रखता था कि अतिथियो को उनके पद और गौरव के अनुसार ही सम्मान प्राप्त हो। राजा बिम्बिसार रुद्रायण के आगमन का समाचार सुनकर सोचते है—

"न मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तमेवमेव प्रवेशयेयम्। महता सत्कारेण प्रवेशयामीति......।"[४]

---

१. कनकवर्णावदान, पृ० १८३।
२. कुणालावदान, पृ० २४६।
३. कुणालावदान। पृ० २४६।
४. रुद्रायणावदान। पृ० ४७२।

पति की अनुपस्थिति मे आतिथ्य करने का दायित्त्व उसकी पत्नी पर आ पड़ता था। "सहसोद्गतावदान" मे एक गृहपति कुछ कार्य-वश कर्वटक में जाते समय अपनी अनुपस्थिति में महात्मा प्रत्येकबुद्ध को अन्नपान से संतुष्ट करने का आदेश अपनी पत्नी को दे जाता है।[1]

अतिथियों के प्रति एक आदर की भावना विद्यमान थी। ब्राह्मण के द्वारा यमली का मूल्य एक सहस्र कार्षापण माँगे जाने पर ज्योतिष्क कुमार ब्राह्मण से कहता है कि इस मे एक वस्त्र परिभुक्त है और एक अपरिभुक्त। जो अपरिभुक्त है उस का मूल्य ५०० कार्षापण और जो परिभुक्त है उस का मूल्य २५० कार्षापण है। इस पर ब्राह्मण उन से उतना ही देने के लिए कहता है, किन्तु ज्योतिष्क कुमार कहता है—ब्राह्मण, अतिथिस्त्वम्। तवैव पूजा कृता भवति। सहस्रमेव प्रयच्छामीति।[2]

घर आये हुए अतिथि का स्वागत न करना उचित नही समझा जाता था। एक बार भद्रंकर नगर मे भगवान् बुद्ध के आने पर वहाँ के लोगों ने उनका स्वागत नही किया। इस पर भगवान् ने ब्राह्मणदारिका द्वारा मेण्ढक गृहपति के पास यह सन्देश भेजा—

"गृहपते, त्वामुद्दिश्याहमिहागतः, त्वं च द्वारं बद्ध्वा स्थितः। युक्तमेतदेवमतिथेः प्रतिपत्तुं यथा त्वं प्रतिपन्न इति ?[3]

O

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १९३।

२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।

३. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७९-८०।

परिच्छेद ५

भोजन-पान

भोजन-पान मे सामिष और निरामिष दोनो ही प्रकार के खाद्य पदार्थ प्रचलित थे। खाद्य पदार्थों की चार श्रेणियाँ थी—

(१) भक्ष्य

(२) भोज्य

(३) चोष्य

(४) लेह्य

(क) धान्य

"दिव्यावदान" में कई प्रकार के चावलों का उल्लेख है—

अकणक[1]—बिना टूटे हुए चावल के दाने, अक्षत।

शालि[2]—यह सर्दियो में उत्पन्न होने वाला एक उत्कृष्ट प्रकार का चावल था।

अतुष[3]—छिलका (तुषा) से रहित धान

व्रीहि[4]—एक प्रकार का धान।

श्यामाक[5]—महीन चावल, जिसे सावाँ कहते है।

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ७४।

२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।

३. सुप्रियावदान, पृ० ७४।

४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१५।

५. वही, पृ० ४१५।

तण्डुल[1] — साफ़ किया हुआ धान ।

चकट्योदन[2]—एक खराब किस्म का चावल ।

गोधूम[3]—गेहूँ

यव[4]—जौ

तिल[5]

(ख) कृतान्न

आहार मे ओदन[6] या भक्त[7] (उबला हुआ चावल, भात) की प्रधानता थी। इसीलिए, सभवतः भोजन के लिए की जाने वाली तैयारियों के लिए "भक्तकृत्य" शब्द प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार भोजन समाप्त कर लेने के लिए "कृतभक्तकृत्य", क्षुधार्त के लिए "छिन्नभक्त"[8] तथा उस स्थान के लिए जहाँ भोजन दिया जाता था, "भक्ताभिसार"[9] ये शब्द प्रचलित थे। इन सब शब्दो मे भक्त शब्द का योग केवल इस बात का सूचक है कि तत्कालीन भोजन मे भात की प्रमुखता थी।

कुल्माष[10] निर्धन लोगो का भोजन था। इस में नमक भी डाला जाता था। "नगरावलम्बिकावदान" मे अलवणिका कुल्माषपिण्डिका का उल्लेख है।[11] "कुम्मासपिण्ड जातक" में कुल्माष को दरिद्रो का भोजन

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।, सुप्रियावदान, पृ० ७४।
२. चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।
३. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
४. वही, पृ० १८४।
५. वही, पृ० १८४।
६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३। रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
७. कनकवर्णावदान, पृ० १८३।
८. तोयिकामहावदान, पृ० ३०१।
९. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५४।
१० वीतशोकावदान, पृ० २७५।, रुद्रायणावदान पृ० ४७३।
११. पृ० ५५।

कहा गया है, जिसे थोडा जल, गुड़ या नमक और चिकनाई डालकर बनाते थे । निरुक्त[1] मे कुल्माष को निकृष्ट भोजन कहा है ।

मण्डीलक[2] आटे की बनाई हुई एक प्रकार की रोटी होती थी । आटे को "समित"[3] कहते थे ।

सक्तु (सत्तू)[4] भी खाया जाता था ।

(ग) मिष्टान्न

गुड[5]—गुड़ ।

शर्करा[6]—शक्कर ।

शर्करा-मोदक[7]—शक्कर का लड्डू ।

उक्करिका[8]—मीठी पाव रोटी ।

खण्ड[9]—खाड

(घ) दाल

मुद्ग[10]—मूंग

माष[11]—उड़द

मसूर[12]—मसूर

---

१. "कुल्माषान् चिदादर इत्यवकुत्सिते" (१।४)
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५६ ।
३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५६ ।
४. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४१ ।
५ पूर्णावदान, पृ० १८ ।, मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१ ।
६. पूर्णावदान, पृ० १८ ।, मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१ ।
७. पूर्णावदान, पृ० १८ ।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३७ ।
६. कनकवर्णावदान पृ० १८४ ।
१०. मान्धातावदान, पृ० १४१ ।, कनकवर्णावदान, पृ० १८४ ।
११. कनकवर्णावदान, पृ० १८४ ।
१२. वही, पृ० १८४ ।

(ङ) गव्य-पदार्थ

दधि[1]—दही ।

नवनीत[2]—मक्खन ।

घृत[3]—घी ।

घी को "सर्पि" भी कहते थे ।

(च) पेय

क्षीर[4]—गाय के दूध के अतिरिक्त छगलिका (बकरी) का दूध[5] भी प्रचलित था ।

मदिरा गृहो का अस्तित्व लोगों मे मद्य-पान के प्रचार को सूचित करता है । इन गृहों को पानागार[6] कहते थे । स्वागत श्रावस्ती पहुच कर पानागार मे जाता है और वहाँ पर प्रवृद्ध वेग मद उत्पन्न करने वाले मद्य का पान करता है ।[7]

चार प्रकार की सुधा[8] का उल्लेख है (१) नीला—नीले वर्ण की (२) पीता— पीले वर्ण की (३) लोहिता—रक्त वर्ण की (४) अवदाता-शुभ्र वर्ण की ।

मधु, माधव, कादम्बरी आदि अन्य परिपानो[9] की भी चर्चा है ।

मास के लगाये हुए झोर [शोरवा, रस] को जोमा कहते थे ।

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४-४३५ ।
२. वही, पृ० ४२७ ।
३ मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१ ।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६ ।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११ ।
५. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६ ।
६. स्वागतावदान, पृ० १०८ ।
७. वही पृ० १०८ ।
८. मान्धातावदान, पृ० १३७ ।
९. मान्धातावदान, पृ० १३७ ।

"चूडापक्षावदान" मे वृद्ध ब्राह्मण की पुत्र वधुएँ उसे सर्प का जोमा पान करने के लिए देती है।[1]

[छ] शाक और फल

कुछ पौधो की जड़े पत्ते, फल, फूल और तने (स्कन्ध) भी खाने मे प्रस्तुत किये जाते थे। इनके लिए "मूलखादनीय", "स्कन्धखादनीय", "पत्रखादनीय", "पुष्पखादनीय" और "फलखादनीय", शब्द प्रयुक्त हुये है।[2]

पलाण्डु (प्याज) का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि क्षत्रिय इसका उपयोग नही करते थे। क्योकि राजा अशोक को रोग-मुक्त होने के लिए तिष्यरक्षिता जब उन से पलाण्डु खाने के लिए कहती है तो वह कहते हैं—

"देवि, अहं क्षत्रियः। कथं पलाण्डुं परिभक्षयामि ?"[3]

[ज] मांस-भक्षण

समाज मे मास-भक्षण प्रचलित था। शूकर के मास का विक्रय होता था। एक कर्पटक [ग्राम] मे पर्वणी उपस्थित होने पर एक सौकरिक द्वारा शूकरों को बाँधकर, उनका मास वेचने के लिए, उन्हे नाव द्वारा नदी के पार ले जाने का उदाहरण प्राप्त होता है।[4]

ऐसे भी लोग थे, जो गो-मांस के द्वारा अपने परिवार का पोषण करते थे। गोघातक भगवान् बुद्ध से कहता है—

"मया एष बहुना मूल्येन क्रीतः। पुत्रदारं च मे बहु पोषितव्यमिति"।[5]

उरभ्रो को मार कर उनके मास-विक्रय से जीविका-यापन करने वाले भी थे। ये औरभ्रक कहलाते थे।[6]

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।
२. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
३. कुणालावदान, पृ० २६४।
४. चूडापक्षावदान, पृ० ४३९।
५. अशोकवर्णावदान, पृ० ८५।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० ६।

मृग, शरभ, मत्स्य, कच्छप, मण्डूक आदि का मांस भी खाया जाता था।[१]

परन्तु बौद्ध-धर्म मे श्रद्धा रखने वाले भोजनार्थ किसी प्राणी की हत्या स्वयं नही करते थे। शाकुनिक के द्वारा अपने लिए लाये हुए जीवित कपिंजल को देख श्यामावती कहती है—

"किमहं शाकुनिकायिनी ? न मम प्राणातिपातः कल्पते। गच्छेति।"[२]

शाकुनिक के पुनः कपिंजल को मार कर ले जाने और यह कहने पर कि भगवान् बुद्ध के लिए इसे बनाओ, वह तत्पर हो जाती है।[३] इससे यह भी प्रकट होता है कि भगवान् बुद्ध मांस भी खाते थे।

[झ] षट् रस भोजन

भोजन मे मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़वा, तीता और कसैला इन षट् रसो का समावेश होता था। आपन्नसत्त्वा स्त्रियो को वैद्यो द्वारा निर्दिष्ट ऐसे आहार दिये जाते थे, जो न अधिक तीते होते थे, न अधिक खट्टे, न अधिक नमकीन, न अधिक मीठे, न अधिक कड़वे और न अधिक कसैले।[४]

निमंत्रण

बौद्ध-धर्म मे श्रद्धा रखने वाले बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजनार्थ आमन्त्रित करते थे। निमन्त्रण स्वीकृति को "अधिवासना" कहते थे।[५] भगवान् बुद्ध शान्त रहकर तूष्णीभाव से निमंत्रण की स्वीकृति देते थे। इसके बाद वे उसी रात को शुद्ध, सुन्दर खादनीय भोजनीय पदार्थ एकत्रित करते थे और प्रातःकाल उठकर घर की सफाई करते थे, गोबर का लेप करते थे और आसन एवं जल रखकर भगवान् बुद्ध को भोजन तैयार हो जाने की सूचना देते थे। भिक्षु-सघ के साथ भगवान् पूर्वाह्ण मे भोजन के लिए जाते थे।[६]

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८४।
२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।
३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० १। इत्यादि
५. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५१। सुप्रियावदान, पृ० ६१।
६. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५३-५४। सहसोद्गतावदान, पृ १८६।

"सुप्रियावदान" में कहा गया है कि भिक्षु-सघ सहित भगवान् के भोजनार्थ पहुंचने पर चोरों ने चन्दन-मिश्रित जल से उन लोगों का हाथ पैर धुलाया।[1] इसके वाद वे अपने-अपने आसनों पर वैठ जाते थे और निमंत्रण देने वाला व्यक्ति स्वयं अपने हाथो से उन लोगों को स्वच्छ एवं सुन्दर भोजन परोसता था। भोजन कर चुकने के वाद हाथ धुलाया जाता था और वर्तन [पात्र] हटा लिए जाते थे।

'स्वागतावदान" मे ब्राह्मण के द्वारा, स्वागत को, आहार और मद्य प्रदान करने का उल्लेख है।[2] भोजन परोसने को "परिवेषण" और परोसने वाले को "परिवेषक" कहते थे।[3]

विशाल भोजो का आयोजन तत्कालीन अन्न-वहुलता का परिचायक है। इन भोजो मे खाद्य एवं पेय पदार्थों का अपार भडार रहता था। श्रावस्ती का एक गृहपति ५०० भिक्षुओं को खिलाने के लिए अन्न-पान गाड़ी (शकट) मे भरकर ले जाता है।[4] एक अन्य स्थल पर एक गृहपति बुद्ध प्रमुख भिक्षु-सघ और पाँच सौ वणिकों को अन्न-पान से संतृप्त करता है।[5] राजा प्रसेनजित् ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को एक सप्ताह तक अपने यहाँ भोजन कराया।[6]

कुछ पारिभाषिक भोजन-सम्वन्धी शव्द

वचे हुए भोजन को "उत्सदनधर्मक" कहते थे।[7] नाश्ते के लिए "पुरोभक्तका"[8] "पूर्वभक्षिका"[9] और 'पुरोभक्षिका;'[10] शव्द प्रचलित थे।

---

१ सुप्रियावदान, पृ० ६१।
२ स्वागतावदान, पृ० ११७।
३. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५४।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४७।
५. सहसोद्गतावदान, पृ० १८६-१६०
६ नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५३।
७. सहसोद्गतावदान, पृ० १६०।
८. वहीं, पृ० १८६।
६. पूर्णावदान, पृ० १८।
१०. स्वागतावदान, पृ० १०८।

ऐसा खाद्य पदार्थ जो भोजन-काल के समाप्त हो जाने पर खाया जाता था, "अकालक" कहलाता था।[1] एक वार चिरकाल तक धर्म-देशना करते हुए भगवान् के भोजन का समय व्यतीत हो गया। मेण्ढक गृहपति के भोजन करने के लिए कहने पर वे कहते है "भोजन-काल तो समाप्त हो गया"। गृहपति के द्वारा "अकालक" के विषय मे पूछे जाने पर वे कहते है—

"घृतगुडशर्करापानकानि चेति"[2]

इस प्रकार घी, गुड़, शक्कर अकालखाद्यक एव अकालपानक का उल्लेख है।

भोजन-पात्र

भोजन से सवन्धित निम्नलिखित वर्तनो का उल्लेख हुआ है—

[१] शतपलपात्र[3]
[२] सौवर्ण पात्र[4]
[३] रजत पात्र[5]
[४] मृण्मय पात्र[6] या मृद्भाजन[7]
[५] स्थालिका या स्थाली[8]
[६] कटच्छु[9]
[७] कासिका[10]

---

१. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१।
२. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८१।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
४. वही, पृ० ४७३।
५. वही, पृ० ४७३।
६. वही, पृ० ४७३।
७. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४।
९. प्रातिहार्यसूत्र, पृ० १०२।
१०. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५।

[८] पिपरीका[१]

[९] नालिका[२]

[१०] पिठरिका[३]

[११] भृङ्गार[४]

O

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४ ।

२. संघरक्षितावदान, पृ० २११ ।

३. अशोकावदान, पृ० २८० ।

४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२४ ।

परिच्छेद ६

क्रीड़ा-विनोद

क्रीडा-विनोद मे सार्वजनीन अभिरुचि थी । तत्कालीन सुसमृद्ध नगर राजधानी, प्रासाद, रम्य-उद्यान, क्रीड़ा-पुष्किरिणी, वस्त्राभूषण तथा अनेक प्रसाधन-सामग्री इन सब का अस्तित्व इस बात का परिचायक है कि लोग आमोद-प्रमोद मे कितने संलग्न रहते थे ।

राजा चन्द्रप्रभ की राजधानी भद्रशिला नगरी मे चतुर्दिक् चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से युक्त सुरभित समीर का प्रसार हो रहा था । एक ओर प्रस्फुटित-पद्म, कुमुद, पुण्डरीक तथा रमणीय कमल पुष्प-मण्डित स्वादु, स्वच्छ एव शीतल जल-परिपूर्ण तडाग, कूप और प्रस्रवण का नयनाभिराम दर्शन होता है, तो दूसरी ओर, ताल, तमाल, कर्णिकार, अशोक, तिलक, पु नाग, नागकेसर, चम्पक, बकुल, पाटलादि पुष्पों से आच्छादित एवं कलविङ्क, शुक, शारिका, कोकिल, मयूर, जीवंजीवक आदि नानाविध पक्षि-गण-निकूजित वनषण्डोद्यान हमारे चित्त को बरबस आकृष्ट कर लेता है ।[1] राजा चन्द्रप्रभ सर्व परित्यागी थे। उन के राज्य में सभी जम्बूद्वीप-वासी हाथी, घोड़े और रथो पर चलते थे । सभी मौलिधर और पट्टधर हो गये थे एवं सभी नानाविध वाद्य-घोषों से युक्त, सर्वालंकार-विभूषित प्रमदा गणो से परिवृत राजक्रीड़ा का अनुभव कर रहे थे ।[2]

क्रीडा के लिए उद्यान, क्रीडा-पुष्किरिणी, मृगया, अनेक कथाएँ, सगीत, नृत्य आदि मनोरंजन के सामान्य प्रचलित साधन थे ।

(क) उद्यान-यात्रा

मनोरजन के लिए उद्यान होते थे । उद्यानो मे भाति-भाति के वृक्ष लगे

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६५ ।
२. वही, पृ० १६६ ।

रहते थे, जो नानाविध चित्तरंजक पुष्पो से आच्छादित होते थे। उन मे मनोरम प्राकृतिक छटा सर्वत्र विराजती थी और भांति-भांति की क्रीडाओ के लिए साधन प्रस्तुत किये जाते थे। इन उद्यानो मे नैक-विध मोहक एवं अनुरागोत्पादक ध्वनि करने वाले पक्षि-गण भी पाले जाते थे। भद्रशिला राजधानी के मणिगर्भ राजोद्यान का मनोरम-दृश्य अवलोकनीय है।[१]

प्राय: वसन्त-ऋतु मे वन तथा उपवनो की शोभा द्विगुणित हो जाने पर लोग मनोरजन के लिए सस्त्रीक उद्यान-यात्रा करते थे। वसन्त-काल के समुपस्थित होने पर एक गृहपति अपने अन्तर्जनो के साथ एक वसन्तकालीन पुष्पाच्छादित-वृक्ष-समन्वित एवं हस, क्रौच, मयूर, शुक, सारिका, कोकिल, जीवजीवकोन्नादित उद्यान मे जाता है—

"..............स गृहपतिः संप्राप्ते वसन्तकालसमये संपुष्पितेषु पादपेषु हंसक्रौञ्चमयूरशुकशारिकाकोकिलजीवंजीवकोन्नादितं वनखण्डमन्तर्जनसहाय उद्यानभूमिं निर्गतः" ।[२]

इसी प्रकार राजा अशोक के भी, वसन्त-काल मे अपने अन्त.पुर के साथ सुपुष्पित उद्यान मे, जाने का उल्लेख है।[३]

गृहपति वलसेन—हैमन्तिक, ग्रैष्मिक एव वार्षिक-तीन प्रकार के उद्यानो का निर्माण कराता है, जिन में ऋतुओ के अनुसार पुप्पादि वृक्ष लगे थे।[४] राजा धन भी अपने पुत्र के लिए ऐसे तीन उद्यानो को वनवाता है।[५]

इस प्रकार उद्यान, पति-पत्नी के सरस जीवन के राग-रंग तथा अठखेलियाँ [क्रीड़ा] करने का एक स्थल था, जहाँ काम-संचार करने वाले विविध पक्षियों का समुचित संग्रह होता था।

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५।

२. सहसोद्गतावदान, पृ० १९२, १९३।

३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५।

४. कोटिकर्णावदान, पृ० २।

५. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।

[ख] जल-क्रीड़ा

उद्यान मे ही क्रीडा-पुष्किरिणी होती थी, जिसमे उत्पल, पद्म, कुमुद, पुण्डरीक आदि जलज-पुष्प प्रस्फुटित रहते थे। वाराणसी का राजा, ब्रह्मदत्त अपने अन्त.पुर-परिवार सहित उद्यान की यात्रा करता है। वहाँ पर अन्त:पुर-वासिनी स्त्रियो के क्रीडा-पुष्किरिणी मे स्नान कर शीतानुवद्ध हो जाने की चर्चा प्राप्त होती है।[१]

"सुधनकुमारावदान" में ब्रह्मसभा नाम की पुष्किरिणी का उल्लेख है, जो उत्पल, पद्म आदि पुष्पो से सछन्न, नानापक्षिगणनिषेवित, स्वच्छ एवं सुरभित जल से परिपूर्ण थी। किन्नर राज दुहिता मनोहरा पाँच सौ किन्नरी-परिवारो के साथ इस पुष्किरिणी में स्नानार्थ जाती थी।[२]

रोहितक महानगर मे एक "उद्यानसभापुष्करिणी" और एक तड़ाग का उल्लेख है, जिस के तट पर कादम्व, हंस, कारण्डव, और चक्रवाक थे।[३]

(ग) मृगया

राजाओ के लिए मृगया एक प्रिय मनोरंजन-साधन था। "वीतशोकावदान" में राजा अशोक मृगवध के लिए जाते हैं।[४] राजकुमार सुधन के भी, मृगया के लिए, जाने का उल्लेख है।[५]

(घ) कथा

परंपरा से प्राप्त कथाएँ सुनना और सुनाना मनोरजन का एक सार्वजनिक साधन था। वैदिक-काल से आज तक महापुरुषो और देवताओ की चरितगाथा का वर्णन करना और सुनना पुण्य-प्रसव का कारण माना गया है। शास्त्रवद्ध कथा एवं नानाश्रुतिमनोरथ आख्यायिकाओ के द्वारा सुप्रिय, सार्थवाह मघ का अनुरंजन करता है।[६]

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४६१।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
३. सुप्रियावदान, पृ० ६७।
४. वीतशोकावदान, पृ० २७२।
५. सुधनकुमारावदान पृ० २८८।
६. सुप्रियावदान, पृ० ६८।

लोग लोकाख्यायिकाओं में भी कुशल होते थे। गृहपति-पुत्र (भृतक) के द्वारा एक लोकाख्यान कथा के कहे जाने का उल्लेख है।[1]

(ङ) कविता-पाठ

प्रचीन-काल से ही कविता-पाठ मनो-विनोद का एक उत्तम साधन माना गया है। वैदिक-काल मे यज्ञ के अवसर पर देवताओ की स्तुति करने के लिए लोग कविता-पाठ करते थे। कवियों को आश्रय देने वाले अधिकांशतः नृपति-गण होते थे। इस प्रकार राजाश्रित कवि राजा की स्तुति कर उन को प्रसन्न करते थे और फलस्वरूप यथेष्ट धन एव मान को प्राप्त करते थे। वाराणसी का राजा ब्रह्मदत्त अत्यन्त कवि प्रिय था। वहाँ एक ब्राह्मण कवि रहता था। शीत-काल मे वह ब्राह्मण राजा के अनुकूल भाषण कर के कुछ शीत-त्राण पाने की इच्छा से उनके पास जाता है। वहाँ राजा के हाथी की स्तुति करता है, जिस से प्रसन्न हो कर वह राजा उस ब्राह्मण कवि को पाँच सुन्दर ग्राम प्रदान करता है।[2]

सुप्रिय "चित्राक्षरव्यञ्जनपदाभिधान" के द्वारा सार्थवाह मघ का मन वहलाता है।[3]

(च) संगीत

वाद्य-यंत्रो को परंपरा से चार भागो मे विभाजित किया जाता है तत (तार वाले), आनद्ध (ढोल की तरह पीटे जाने वाले), सुषिर (साँस से संचालित) और घन (वजाये जाने वाले)।[4] इसी दृष्टि से "दिव्यावदान" मे प्राप्त वाद्य यत्रों का विभाजन निम्नलिखित रूप मे किया जाता है।

(अ) तन्त्री वाद्य

(१) वीणा[5]

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
२. स्तुतिब्राह्मणावदान, पृ० ४६।
३. सुप्रियावदान, पृ० ६८।
४. रामायणकालीन संस्कृति—शान्तिकुमार नानूराम व्यास, पृ० १०४।
५. सुप्रियावदान, पृ० ६७।, चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५,१९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।

(२) वल्लिका[1]
(३) वल्लरी[2]
(४) महती[3]
(५) सुघोपक[4]

(ब) ताड्य वाद्य

(१) पणव[5]
(२) मृदग[6]
(३) भेरी[7]
(४) पटह[8]
(५) मुरज[9]
(६) घण्टा[10]
(७) ताल[11]

इन ताड्य वाद्यों में घण्टा और ताल धातु के बने हुए होते थे। और अन्य शेष ढोलों की श्रेणी में आते थे।

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६७।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५,१९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।
३. सुप्रियावदान, पृ० ६७।
४. वही, पृ० ६७।, चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५, १९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।
५. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५,१९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।
६. वही, पृ० १९५,१९६।, वही, पृ० २९९।
७. वही, पृ० १९५,१९६।
८. वही, पृ० १९५,१९६।
९. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
१०. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, इत्यादि
११ चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।

[ख] मुखवाद्य

[१] वेणु[1] (वाँसुरी)

[२] शंख[2]

[३] तूर्य (तुरही)[3]

राजाज्ञा घण्टा बजाकर प्रसारित की जाती थी[4], या जब कोई धनाढ्य व्यापारी महासमुद्रावतरण करता था, तो वह घण्टावघोष के द्वारा यह घोषणा करवाता था कि जो भी महासमुद्रावतरण के इच्छुक हों, वे शीघ्र ही तैयार हो जाँय।[5]

जन्मोत्सव के समय आनन्द की भेरी बजायी जाती थी।[6] मनोहरा के साथ सुधनकुमार के हस्तिनापुर लौटने का समाचार सुनकर राजा धन आनन्द की भेरी बजवाते है।[7] राजा चन्द्रप्रभ सुवर्ण-भेरी बजाकर दान देते थे।[8]

लोग निष्पुरुष तूर्य-निनाद मे अपनी पत्नी के साथ रमण, परिचरणादि क्रीड़ा मे रत होते थे।[9]

रोहितक महानगर में वीणा, वल्लिका, महती और सुघोपक वाद्यों के

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५, १९६।

२. वही, पृ० १९५, १९६।

३. वही, पृ० १९६।

४. वही, पृ० १९६।

५. कोटिकर्णावदान, पृ० २।

६. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।

७. वही, पृ० ३००।

८. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।

९. कोटिकर्णावदान, पृ० २। सुधनकुमारावदान, पृ० २८७, २९९।

साथ-साथ गीत-ध्वनि भी सुनाई पड़ती है।[१] कुणाल अपनी स्त्री काञ्चनमाला के साथ वीणा वजाता और गाता हुआ तक्षशिला से निकल पड़ता है।[२]

भद्रशिला नगरी विभिन्न वाद्यों से सदा निनादित रहती थी।[३]

[छ] नृत्य

जव स्त्रियाँ नृत्य करती थी, तो उसकी संगति में वाद्य-यन्त्र वजाये जाते थे। राजा रुद्रायण वीणा वजाने में दक्ष थे तथा उनकी पत्नी चन्द्रप्रभा देवी नृत्य-कला मे कुशल थी। इस प्रकार चन्द्रप्रभा देवी नृत्य करती थी और रुद्रायण वीणा वजाते थे।[४]

किन्नर-लोक मे पहुँचकर, सुधनकुमार सहस्रों किन्नरो के साथ नृत्य, गीत और अनेक वाद्यों से परिवृत थे।[५]

[ज] क्रीड़ाएँ

तत्कालीन अनेक क्रीडाओं के नाम प्राप्त होते हैं।[६] जैसे—

(१) अकायिका

(२) सकायिका

(३) वित्कोटिका

(४) स्यपेटारिका

(५) अधरिका

(६) वशघटिका

(७) संधावणिका

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६७।

२. कुणालावदान, पृ० २६७।

३. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५।

४. रुद्रायणावदान पृ० ४७०।

५. सुधनकुमारावदान, पृ० २९९।

६ रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।

(८) हस्तिविग्रह

(९) अश्वविग्रह

(१०) बलीवर्दविग्रह

(११) धनुर्ग्रह

इन उपर्युक्त क्रीड़ाओं का विवरण कही स्पष्ट रूप से नही प्राप्त होता कि ये किस प्रकार की क्रीड़ाएँ थी ? बस केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ये तत्कालीन कुछ क्रीड़ाओं के प्रसिद्ध नाम है ।

O

परिच्छेद ७

वेश-भूषा

"दिव्यावदान" मे बहुसंख्यक वस्त्रों का अनेक बार उल्लेख हुआ है। नाना प्रकार के वस्त्र दान मे दिये जाते थे। राजा चन्द्रप्रभ ने अनेक रंगो के, अनेक देशों के तथा अनेक चित्र-विचित्र प्रकार के वस्त्रों का दान समस्त जम्बुद्वीप वासियो को किया था।[1]

लोग उपहार-स्वरूप भी दूसरो के पास वस्त्र भेजते थे। राजा बिम्बिसार ने महार्ह वस्त्रो से एक सन्दूक भरकर राजा रुद्रायण के पास प्राभृत-रूप मे भेजा था।[2] कीमती कपड़े "महार्ह" वस्त्र कहलाते थे।

राजा के योग्य वस्त्र को "राजार्ह" कहते थे। राजा चन्द्रप्रभ ने समस्त जम्बुद्वीप-निवासियो को यथेष्ट "राजार्ह" वस्त्र प्रदान किया था।[3] राजा बिम्बिसार ने राजा रुद्रायण को "राजार्ह" वस्त्र-ग्रन्थ-विलेपनो से अलंकृत कर भोजन कराया था।[4]

धूप के धुएँ से वस्त्रो को सुगन्धित करने की रीति प्रचलित थी। राजा बिम्बिसार के वस्त्रो के काष्ठधूम से वासित होने के कारण ही ज्योतिष्क कुमार के घर की स्त्रियो के नेत्रो से अश्रुपात होने लगा था।[5]

पहने हुए अर्थात् उपयोग मे लाये हुए वस्त्र को "परिभुक्तक" तथा ऐसा वस्त्र जिसका उपयोग अभी न किया गया हो "अपरिभुक्तक" कहलाता था।[6]

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५।
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२।
५. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।
६ वही, पृ० १७१।

नये कपड़े "अहत" वस्त्र कहलाते थे।[१] "अनाहत - दूष्य" (पुराने वस्त्र) का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[२]

मामूली कपड़ा "खुस्तवस्त्र" कहलाता था।[३]

रंगे हुए वस्त्रो का भी प्रयोग होता था। शुक्ल[४] या अवदात वस्त्र[५] के अतिरिक्त नीले[६], पीले[७], और लाल[८] वस्त्रों का भी उल्लेख है। संन्यासी लोग काषाय (गेरुए रंग के) वस्त्र[९] धारण करते थे।

"दिव्यावदान" मे निम्नलिखित वस्त्रो का उल्लेख प्राप्त होता है—

(१) कौशेय[१०]
(२) क्षौम[११]
(३) काशिक[१२]
(४) कार्पास[१३]
(५) कौटुम्व[१४]

---

१. कुणालावदान, पृ० २५५।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।
३. स्वागतावदान, पृ० १०७।
४. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
५. पूर्णावदान, पृ० १७। ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३। चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
६. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८। चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
७. पूर्णावदान, पृ० १७। ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३। चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
८. वही, पृ० १७। वही, पृ० १६३। सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
९. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।
१०. चन्द्रप्रभबोधिस्त्वचर्यावदान, पृ० १९६। रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
११. वही, पृ० १९६।, वही, पृ० ४७४।
१२ पूर्णावदान, पृ० १७। चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
१३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
१४. वही, पृ० ४७४।

(६) सण शाटिका[1]

(७) फुट्टक[2]

(८) अंशुक[3]

(९) पट्ट[4]

(१०) ऊर्णादुकूल[5]

(११) चीन वस्त्र[6]

(१२) कम्बल[7]

(१३) प्रावरक[8]

(१४) यमली[9]

(१५) स्नानशाटक[10]

(१६) कल्पदूष्य[11]

(१७) तुण्डिचेल[12]

(१८) पोत्री[13]

(१९) तसरिका[14]

---

१. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२।
२. पूर्णावदान, पृ० १७।
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
४. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
५. वही, पृ० १९६।
६. वही, पृ० १९६।
७. वही, पृ० १९६।
८. वही, पृ० १९६।
९. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७१।
१०. वही, पृ० १७२।
११. मान्धातावदान, पृ० १३३, १३७।
१२. वही, पृ० १३७।
१३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५८।
१४ ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०-१७१।

कपास का स्वच्छ (श्लक्ष्ण) सूत्र काता जाता था।[1] ब्राह्मणी एक कुविन्द से सहस्र कार्षापणो वाली यमली बुनवाती है।[2]

स्त्रियाँ सिर पर एक वस्त्र डाले रहती थी, जिसे "शिरोत्तरपट्टिका" कहते थे।[3] स्त्रियाँ अपने वस्त्र की छोर मे कार्षापणो को बाँधकर रखती थी।[4]

राजाओं के यहाँ रत्न-सुवर्ण जटित कपड़े भी होते थे। राजा चन्द्रप्रभ अन्य वस्त्रों के साथ "रत्न-सुवर्ण-प्रावरक" भी दान में प्रदान करता है।[5]

"प्रावरण" एक प्रकार का ऊपरी वस्त्र था, जिसे "उपरिप्रावरण" भी कहते थे।[6]

प्रव्रजितों और भिक्षुओं के वेश में निम्नलिखित वस्त्रो का उल्लेख हुआ है—

(१) चीवर[7]
(२) संघाटी[8]
(३) काषाय-वस्त्र[9]
(४) पांशुकूल[10]

ऋषि वल्कल और चीवर पहनते थे।[11] ये चीवर दर्भ (कुशो) के बने होते थे।[12]

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७१।
२. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५३।
३. धर्मरुच्यावदान, पृ० १५८।
४. पूर्णावदान, पृ० १८।
५. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
६. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५८।
७. सुप्रियावदान, पृ० ६१।
८. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
९. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।
१०. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
१२ वीतशोकावदान, पृ० २७२।

ब्राह्मणो की वेश-भूषा मे अन्तर रहा होगा, जिसके आधार पर उन्हें पहचाना जाता था। "ज्योतिष्कावदान" मे कौशिक ब्राह्मण का वेश बना कर अनङ्गण गृहपति के घर जाते है।[१] इसी प्रकार देवेन्द्र शक्र के, उदार ब्राह्मण का रूप धारण कर उत्पलावती राजधानी मे, जाने का उल्लेख है।[२]

भृतक पुरुषों की वेश-भूषा पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। उनके बाल रूखे रहते थे और वस्त्र फटे हुए और मलिन। सभवतः उनकी पहचान भी इन्ही के कारण होती थी। भृतक-कर्म करने के लिए उद्यत अपने पुत्र के भृतक-वीथी मे खड़े होने पर भी जब उसे कोई नही पूछता, तो उसकी माता कहती है—

"पुत्र, न एवंविधा भृतकपुरुषा भवन्ति। पुत्र, स्फटितपरुषा रूक्षकेशा मलिनवस्त्रनिवसनाः।"

और उसे आदेश देती है कि यदि तुम्हें भृतक-कर्म करना है, तो इस प्रकार के वेश को धारण कर भृतक-वीथी मे जाओ।[३]

इसी प्रकार "नगरावलम्बिकावदान" मे कुविन्द की वेश-भूषा का परिचय प्राप्त होता है।[४]

६ राजाओ के यहाँ सौ शलाकाओ वाले छत्रों (शतशलाकं छत्रम्) तथा सौवर्ण-मणि-व्यजनो का अस्तित्व तत्कालीन सिलाई के प्रचार का सूचक है।[५]

"रामायण" मे भी सौ शलाकाओ वाले छत्र का उल्लेख है।[६]

पैरो मे उपानह धारण किये जाते थे। राजा विम्बिसार ज्योतिष्क कुमार के गृह-स्थित मणि-भूमि को वापी समझ कर जूते उतारने लगते है।[७]

---

१ ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७।
२. रूपावत्यवदान, पृ० ३०८।
३. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
४. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२।
५ ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७। चूडापक्षावदान, पृ० ४४४।
६. २।२६। १०
७. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।

भगवान् बुद्ध कर्मापनय करने के निमित्त पन्थक से भिक्षुओ के जूते साफ़ करने को कहते है ।[1]

आभूषण के लिए अलकार[2] और आभरण[3] दो शब्द प्रयुक्त हुए है । अलकार, स्त्री और पुरुष दोनो ही धारण करते थे । उपगुप्त के आगमन का शुभ समाचार देने वाले प्रियाख्यायी को राजा अशोक शत- सहस्र मूल्य वाला मुक्ताहार अपने शरीर से उतार कर देते है ।[4] भविल रत्नकर्णिका कानो में पहने था ।[5] भद्रशिला राजधानी मे राजा चन्द्रप्रभ ने सर्वालंकार-विभूषित कुमार-कुमारिकाओ का दान दिया था ।[6] श्रोण कोटिकर्ण प्रेतनगर मे अंगद, कुंडल, विचित्र माल्यादि आभरणों तथा अनुलेपनो से युक्त एक पुरुष को चार अप्सराओ के साथ क्रीड़ा करते हुए देखता है ।[7]

सिर मे धारण किये जाने वाले अलकारो मे "चूड़ामणि" का उल्लेख हुआ है ।[8] इसे केवल स्त्रियाँ ही पहनती थी ।

कानों मे "कुंडल" पहना जाता था । ये लेश मात्र शरीर-सचालन से हिलने-डुलने लगते थे । इसे स्त्री[9] और पुरुष[10] समान रूप से धारण करते थे । चन्द्रप्रभ देवकन्या ने चंचल एव स्वच्छ कुंडल धारण किया था ।[11] कानों मे पहने जाने वाले एक और अलकार "कर्णिका" का उल्लेख हुआ है । यह कई वस्तुओ की वनाई जाती थी और इसका नामकरण उस वस्तु के आधार पर होता था, जिससे वह निर्मित की जाती थी, जैसे रत्नो की वनी कर्णिका "रत्नकर्णिका", लकडी की वनी "दारुकर्णिका" लाख की वनी "स्तवकर्णिका"

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३१ ।
२. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
३. वही, पृ० १९६ ।
४. कुणालावदान, पृ० २४५ ।
५ पूर्णावदान, पृ० १६ ।
६ चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
७. कोटिकर्णावदान, पृ० ५ ।
८. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८, २९० २९१ ।
९. कोटिकर्णावदान, पृ० ७ ।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७० ।
१०. वही, पृ० ५ ।, चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
११ रुद्रायणावदान, पृ० ४७० ।

और राँगे की बनी "त्रपुकर्णिका" कहलाती थी ।[१] "आमुक्तिका" भी कानों मे पहनने का एक आभूषण था ।[२]

गले मे "हार"[३], "अर्धहार"[४] और चित्र-विचित्र "मालाएँ"[५] पहनी जाती थी । "हार" प्राय: सोने के होते थे, जिन मे मणियाँ जड़ी होती थी ।[६] इन अलकारो को भी स्त्री और पुरुष दोनो ही पहनते थे ।

बाहो में "अंगद"[७] और "केयूर"[८] स्त्री-पुरुष दोनों ही धारण करते थे ।

कलाई मे "वलय"[९] पहना जाता था । "कटक" भी कलाई में पहनने का एक आभरण था ।[१०]

उंगली मे अगूठी पहनी जाती थी, जिसे "अंगुलिमुद्रिका"[११] या "अगुलिमुद्रा"[१२] कहते थे ।

कमर मे स्त्रियाँ "काँची"[१३] और "मेखला"[१४] धारण करती थी । ये अलकार साथ ही इन के अधोवस्त्र को यथास्थान रखने मे भी सहायक होते थे । मनोहरा किन्नरी को "सचीवरप्रभ्रष्टकाञ्चीगुणाम्" कहा गया

---

१. पूर्णावदान. पृ० १६ ।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २, १४ ।
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ । रुद्रायणावदान, पृ० ४७० ।
४. वही, पृ० १९६ ।, वही, पृ० २८८ ।, वही, पृ० ४७० ।
५. कोटिकर्णावदान, पृ० ५, ७ ।
६. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०५ ।,वीतशोकावदान, पृ० २७३ ।
७ कोटिकर्णावदान, पृ० ५,७ ।
८ चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
९. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ ।
१०. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५११ ।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २९६, २९८ ।
१२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७६ ।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९२,२९८ ।
१३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०६ ।
१४. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४, ५०५ ।

है ।[१] रमण नगर मे, मैत्रकन्यक ने ऐसी अप्सराओ को देखा, जिन की "कांची" खिसक गई थी ।[२] मणियों की दानेदार करधनी "मेखला" कहलाती थी । इसे पहन कर चलने से मधुर झंकार भी होता था । रमण नगर में अप्सराओं को 'क्वणद्रुचिरविविधमणिमेखलाप्राग्भारमन्दविलासगतयः" कहा गया है ।[३]

पैरों के आभूषण मे "नूपुर" का उल्लेख हुआ है । यह स्त्रियों का अलंकार था । "नूपुर" मणि-जटित और घुंघरुओं वाले होते थे, जो चलने से वजते थे ।[४]

तत्कालीन भारत मे मणि-रत्नो का यथेष्ट प्रचार था । लोग समुद्रावतरण कर अनेक प्रकार के मणि-रत्नो को अपने साथ ले आते थे । मणि, मुक्ता, वैडूर्य, शख, प्रवाल, रजत, जातरूप, अश्मगर्भ, मुसारगल्व, लोहितिक, दक्षिणावर्त आदि रत्नो का उल्लेख हुआ है ।[५] समस्त जम्बुद्वीपवासी "मणिमुक्ताभरणादि" से युक्त तथा "सर्वालंकारविभूषित-प्रमदागण" से परिवृत हो कर राज-श्री का अनुभव करते थे ।[६] किन्नरराज द्रुम प्रभूत मात्रा में मणि, मुक्ता, सुवर्ण आदि दे कर मनोहरा को सुधनकुमार के साथ हस्तिनापुर के लिए भेजते है ।[७]

लोग पशुओं को भी सुवर्णादि से विभूषित करते थे । दान मे दी जाने वाली गायो के सीग सोने से मढ़े होते थे—"सुवर्णशृङ्गाश्च गावः कामदोहिन्यः" ।[८]

रथो का भी सुवर्णादि से अलंकृत होने का उल्लेख प्राप्त होता है । जम्बुद्वीप निवासी चार अश्वो से युक्त सुवर्णमय, रूप्यमय रथो पर आरूढ़

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ ।
२. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०६ ।
३. वही, पृ० ५०४ ।
४. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०५ ।
५. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२ ।
६. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।
७. सुधनकुमारावदान, पृ० २९९ ।
८. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६ ।

हो कर एक उद्यान से दूसरे उद्यान तथा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरण करते थे।[१]

लम्बे केशो को शारीरिक सौन्दर्य मे बड़ा महत्त्व दिया जाता था। मनोहरा किन्नरी को "आयतनीलसूक्ष्मकेशीम्" कहा गया है।[२]

पुरुष अपने बाल तथा दाढी-मूँछ कटवाते नही थे। इन को व्यवस्थित रूप से संवार कर रखा जाता था। राजा बिन्दुसार के केश श्मश्रु प्रसाधन के लिए एक नापिनी थी, जो उन के केश-श्मश्रु को संवारती थी।[३]

रामायण-काल मे भी पुरुष-वर्ग दाढी-मूँछ रखते थे। वहाँ नाइयो को "श्मश्रु-वर्धन" की संज्ञा दी गई है।[४]

भृतको के केश सवरे नही होते थे। उन्हे "रूक्षकेशा" कहा गया है।[५] वध्यघातको को लम्बे लटकने वाले बाल होते थे।[६] तपस्या करने वाले ऋषि दीर्घ केश, श्मश्रु, नख और रोम वाले होते थे।[७] राजा रुद्रायण ने केश-श्मश्रु कटवा कर और कापाय-वस्त्र धारण कर प्रव्रजित होने के विषय मे रौरुक नगर मे घटावघोष करवाया था।[८]

स्नान मे सुगधित पदार्थो का उपयोग चिरकाल से होता आया है। स्नान का जल सुगन्धित रहता था। राजा बिम्बिसार ने रुद्रायण को अनेक सुगधित पदार्थो से युक्त जल से स्नान कराया था।[९] ब्रह्मसभा पुष्करिणी उत्पल, पद्म आदि पुष्पो से संछन्न, नानापक्षिगणनिषेवित, स्वच्छ एवं सुरभित जल से परिपूर्ण थी।[१०]

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३।
४. ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन्॥ (६।१२८। १३)
५. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
६. वीतशोकावदान, पृ० २७२।
७. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
८. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२।
९. वही, पृ० ४७२।
१०. सुधनकुमारावदान. पृ० २८७।

वे सुगन्धित द्रव्य, जिन का उपयोग स्नान-काल मे किया जाता था, "स्नानोद्वर्तन" कहलाते थे। किन्नरराज दुहिता मनोहरा पाँच सौ किन्नरी परिवारों के साथ ब्रह्मसभा पुष्करिणी में नानाविध स्नानोद्वर्तनो को ले कर स्नानार्थ जाती थी।[1]

सिर से स्नान किये जाने का उल्लेख है। मातगदारिका प्रकृति सिर से स्नान कर अनाहतदूष्य को धारण करती है।[2]

मनुष्य-गन्ध को नष्ट करने के लिए मनोहरा किन्नरी को सिर से नहलाया गया था।[3]

अन्य शृंगार-प्रसाधनो मे चन्दन[4], कुंकुम[5], कपूर[6], अगुरु-गन्ध[7], चूर्णगंध[8], कुसुम-गध[9], धूप[10], माल्य[11], विलेपन[12] आदि का उल्लेख हुआ है। राजा बिम्बिसार ने रुद्रायण को राजार्ह वस्त्र, गन्ध, माल्य और विलेपनो से अलकृत कर भोजन कराया।[13] वत्सराज उदयन अनुपमा को पत्नी रूप मे स्वीकार करते समय अन्य वस्तुओ के साथ पाँच सौ कार्षापण प्रतिदिन गन्धमाल्य के निमित्त देता है।[14]

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।
३. सुधनकुमारावदान, पृ० २९८।
४. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५।, कुणालावदान। पृ० २५९।
५. कुणालावदान, पृ० २५९।
६. वही, पृ० २५९।
७. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५।
८. वही, पृ० १९५।
९. वही, पृ० १९५।
१०. रुद्रायणावदान, पृ० ४९१।
११. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।, रुद्रायणावदान पृ० ४७२।
१२. वही: पृ० १९६।, वही, पृ० ४७२।
१३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२।
१४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५।

तैल आदि सुगन्धित पदार्थों को वेचने वाला "गान्धिक" कहलाता था।[१]

पुष्पो से भी शरीर का शृंगार किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है, रात को मालाएँ पहन कर सोने का प्रचलन था। सुधन कुमार नीलोत्पल की माला धारण किये हुए रात मे उठ कर, उस मार्ग से मनोहरा की खोज में जाता है, जिस पर कोई रक्षक पुरुष न थे।[२]

O

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१८।

२. सुधनकुमारावदान, पृ० २९४-९५।

परिच्छेद ८

नारी

नारी जीवन के वस्तुतः तीन सोपान हैं—कन्यात्व, पत्नीत्व और मातृत्व। नारी-संस्कृति का यथार्थ स्वरूप प्राप्त करने के लिए इनका इसी क्रम से विश्लेषण उचित प्रतीत होता है।

(क) कन्यात्व

परिवार में कन्या का जन्म सन्ताप जनक न था। उसका पालन-पोषण पूर्ण मनोयोग के साथ किया जाता था। मानव की सहज वृत्ति सन्तति-स्नेह से कन्याएँ वंचित नहीं रहती थी। उसके प्रति घृणा या द्वेश नही किया जाता था। कन्या के उत्पन्न होने पर भी पुत्रजन्मवत् सर्व अनुष्ठेय कृत्यों का सम्पादन हर्ष एवं उल्लास के साथ समुचित रूप से किया जाता था।[२] राजा धन अन्य सब प्रकार से सम्पन्न होने पर भी सन्तान न होने के कारण चिन्तित हो सोचता है, "अनेकधनसमुदितं मे गृहम्। न मे पुत्रो न दुहिता"।[१] इससे यह स्पष्ट होता है, कि पुत्र अथवा दुहिता दोनो ही परिवार के लिए आह्लादजनक समझे जाते थे।

कन्याएँ संगीत, नृत्यादि ललित कलाओ मे दीक्षित होती थी।[३] वे शिक्षा भी प्राप्त करती थी। "माकन्दिकावदान" में दारिकाओ के द्वारा, रात्रि मे बुद्धवचन का पाठ किए जाने का उल्लेख है।[४]

युवावस्था के प्राप्त होने पर, माता-पिता, कन्या के लिए समुचित वर का चुनाव पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात् नियत सिद्धान्तों के आधार पर ही करते थे।

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४४६।

२. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।

३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।

४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७।

(ख) पत्नीत्व

विवाह होने के वाद पति-गृह मे कन्या "वधू" का पद प्राप्त करती थी।[१] पत्नी के लिए "भार्या" शव्द प्रचलित था।[२] भार्या के गुणों में "सदृशिका", "हृद्या", "आश्रवा" और "प्रियंवदा" की गणना की गई है।[३] वह पति की सहधर्मचारिणी होती थी। सुख और दुःख दोनो मे ही वह सदा पति के साथ रहती थी।[४]

नैतिक गुणो के अतिरिक्त पत्नी मे शारीरिक आकर्षण की भी अपेक्षा रहती थी।

स्त्री के शरीर का रग द्रवित नवकनकरस के समान (द्रवितनवकनकरसरागावदातमूर्तयः)[५] या मेघ के समान गौर वर्ण (मेघवर्णा)[६] होना चाहिए। उसे सुप्रतिष्ठित "तनुत्वचा" वाली होना चाहिए।[७] उसके नेत्र मनोहर (मधुरलोचना)[८] और विकसित नीलरक्तांशुक विशाल नव कमल के समान (अभिनीलरक्तांशुकविसृतायतनवकमलसदृशनयना)[९] होने चाहिएँ। उनके कोनें लाली लिए हुए (रक्तान्त) हो।[१०] भौहे सुन्दर (सुभ्रुवं) हों।[११] उनकी आँखे हरिण या मृग के समान भोली-भाली होनी चाहिएँ।[१२] नाक उठी हुई (तुङ्गनासा) हो।[१३] दाँत गोक्षीर के समान पाण्डुवर्ण के तथा

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ८।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
४. कुणालावदान, पृ० २६७।
५. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
६. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
७, वही, पृ० ४१२।
८. वही, पृ० ४११।
९. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
१०. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
१२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
१३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।

समान शिखरों से युक्त स्निग्ध आभा वाले हों।[1] अवरोष्ठ विद्रुम, मणि, रत्न एवं विम्बाफल के सदृश हों।[2] उसका मुख कमल पलाश सदृश भास्वरित अधर किशलयों से युक्त होना चाहिए।[3] गण्डपार्श्व सुदृढ़ एवं परिपूर्ण हो।[4] मुख मंडल स्वच्छ (विमल) चन्द्रमा के समान हो।[5] ग्रीवा मृग के समान होनी चाहिए।[6] हाथ लम्बे होने चाहिएँ[7] तथा अँगुलियाँ कमल के सदृश सहित और कान्तिमान् नखो वाली।[8] स्तन कनक कलशाकार, कछुए की पीठ की तरह मोटे और उठे हुए, पुष्ट (कठोर) अर्ध वृत्ताकार और परस्पर सटे हुए (संहत) होने चाहिएँ।[9] पेट पतला (क्षामोदरी) हो और उसमे गभीर त्रिवलि रेखाएँ हो।[10] उसे मृगोदरी होना चाहिए।[11] वह कमर के पतली होने के कारण कनक कलशाकार पृथु-पयोधर-भार से अवनमित मध्य भागो वाली हो।[12] जघन "रथाङ्गसंस्थित" होना चाहिए।[13] जाँघे कदली के तने के सदृश या हाथी की सूँड़ की तरह हो।[14] "मृगजघा" भी यहाँ स्त्रियों के प्रशस्त गुणो मे परिगणित है।[15] कद मझला हो, न अधिक लम्बा और न ठिगना।[16] उसकी चाल मन्द और विलासयुक्त होनी चाहिए।[17]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
४. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
५. वही, पृ० २८८।
६. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
७. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
८. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
९. सुधनकुमारावदान पृ० २८८।
१०. वही, पृ० २८८।
११. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
१२. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
१३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
१४. वही, पृ० २८८।
१५. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४११।
१६. वही,
१७. मै

सुधन कुमार मनोहरा किन्नरी को अठारह स्त्री लक्षणों से समलंकृत देखता हैं।[१]

इस प्रकार पत्नी को शारीरिक एवं नैतिक गुणो से अलंकृत होना चाहिए।

दुष्टा पत्नी के ताडन एवं उसके परित्याग के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। "चूडापक्षावदान" मे कहा गया है कि ब्राह्मण के बारह पुत्र अपनी-अपनी दुष्ट पत्नियो की पिटाई भली-भाँति करते है।[२] राजा अशोक को यह ज्ञात होने पर कि कुणाल का नेत्र निष्कासन कर्म तिष्यरक्षिता-प्रयुक्त है, वह कहते हैं—

"त्यजाम्यहं त्वामतिपापकारिणी—
मधर्मयुक्तां श्रियमात्मवानिव ॥"[३]

[ग] मातृत्व

नारी के पत्नीत्व का पूर्णतम सार्थक्य उसके मातृत्व की गौरवमयी परिणति मे ही निहित है। बिना मातृ-पद को प्राप्त किये नारी की जीवन-यात्रा अधूरी रह जाती है। मातृत्व के इस गौरव के कारण ही स्त्री का एक नाम "प्रजावती" भी था।[४] वर और वधू का चुनाव ऐसे सुयोग्य पुत्र की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता था, जो माता-पिता के सद्गुणो का कान्त संमिश्रण हो। अनुरूप पत्नी से पुत्र लाभ चरम आनन्द की वस्तु थी। इसीलिए मातग-राज त्रिशकु अपने पुत्र शार्दूलकर्ण के लिए शीलवती, रूपवती, प्रतिरूपा और प्रजावती कन्या को पत्न्यर्थ ढूँढता है।[५]

पत्नी का वन्ध्यात्व पति के लिए अपार वेदना का कारण होता था।[६] राजाओ के अपुत्र होने पर उन्हे राजवंशसमुच्छिन्न हो जाने की चिन्ता

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
२. चूडापक्षावदान, पृ० ४३५।
३. कुणालावदान, पृ० २७०।
४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।
५. वही, पृ० ३१९।
६. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।

अत्यन्त बाधित किया करती थी। अनेक प्रकार के धन-धान्य-संपन्न होने पर भी एक पुत्र का न होना अपार दुःख का कारण होता था। राजा प्रणाद इसी चिन्ता से ग्रस्त था—

"अनेकधनसमुदितोऽहमपुत्रश्च। ममात्ययाद् राजवंशसमुच्छेदो भविष्यति"।[१]

सन्तान प्राप्त्यर्थ मनुष्य अनेक प्रकार के देवाराधन किया करते थे।[२]

पत्नी के गर्भवती होने पर पति के हर्ष की सीमा नही रहती थी। गृहपति बलसेन, पत्नी को आपन्नसत्त्वा जान कर अपनी प्रसन्नता को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

"अप्येवाहं चिरकालाभिलषितं पुत्रमुखं पश्येयम्। जातो मे स्यान्नावजातः। कृत्यानि मे कुर्वीत। भृतः प्रतिविभृयात्। दायाद्यं प्रतिपद्येत। कुलवंशो मे चिरस्थितिको भविष्यति।"[३]

गर्भिणी स्त्रियों के आहार-विहार में विशेष सावधानी रखी जाती थी। उन्हें वैद्यो द्वारा निर्दिष्ट ऐसे आहार दिये जाते थे, जो अति तिक्त, अम्ल, लवण, मधुर, कटु एव कषाय न होते थे। गर्भ परिपुष्टि काल पर्यन्त वे किंचिदपि अमनोज्ञ शब्द-श्रवण नही करती थी। वे एक मंच (खाट) से दूसरे मंच पर पीठ के सहारे जाती थी। जमीन पर पैर रख कर नही चलती थी।[४]

वृद्धयुवति (दाई) का अस्तित्व तत्कालीन प्रसव-विज्ञान की प्रगति का आभास कराता है। इन का कार्य प्रसव-काल उपस्थित होने पर बच्चे को सुव्यवस्थित ढंग से उत्पन्न कराना होता था, तथा ये उस के जीवित रहने के लिए कुछ उपाय का भी निर्देश करती थी। श्रावस्ती के एक ब्राह्मण की संतान जीवित नही रहती थी। अत. वह प्रसव काल उपस्थित होने पर एक

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।
२, कोटिकर्णावदान, पृ० १।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८६। मैत्रकन्यकावदान, पृ ४६३।
३. वही, पृ० १।
४. वही, पृ० १।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।

वृद्धयुवति को बुलाता है, जो बच्चे को उत्पन्न कराती है, और पुत्र उत्पन्न होने पर कहती है—

"इमं दारकं चतुर्महापथे धारय। यं कंचित् पश्यसि ब्राह्मणं वा श्रमणं वा, स वक्तव्यः—अयं दारकः पादाभिवन्दनं करोतीति। अस्तं गते आदित्ये यदि जीवति, गृहीत्वा आगच्छ। अथ कालं करोति, तत्रैवारोपयितव्यः"।[1]

बच्चे के उत्पन्न होने पर वृद्धयुवति सर्व-प्रथम उस को स्नान कराती थी। तत्पश्चात् शुक्ल वस्त्र द्वारा वेष्टित कर उस के मुख को नवनीत से पूर्ण कर देती थी।

"दिव्यावदान" मे धात्रियो का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जो बच्चों का पालन-पोषण सम्यक् रूपेण करती थी। इन की देख रेख में बच्चे सरोवरावस्थित पकज के समान शीघ्र ही विकास को प्राप्त करते थे।[2] ये धात्रियाँ चार प्रकार की होती थीं।

(१) अङ्कधात्री[3] या अंसधात्री[4]—जो बच्चे के अग प्रत्यग को दबाती थी।

(२) मलधात्री[5] —जो बच्चे को नहलाती थी तथा उस के कपड़ो से मल साफ करती थी।

(३) स्तनधात्री[6] या क्षीरधात्री[7]—जो बच्चे को दूध पिलाती थी।

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, मैत्रैयावदान, पृ० ३५।, सुप्रियावदान पृ० ६३।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।, रूपावत्यवदान, पृ० ३१०। मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९५।
३. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, मैत्रैयावदान, पृ० ३५।, सुप्रियावदान, पृ० ६३। सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
५. वही, पृ० २।, वही, पृ० ३५।, वही, पृ० ६३।, वही, पृ० २८७। रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
६. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
७ कोटिकर्णावदान, पृ० २।, मैत्रैयावदान, पृ० ३५।, सुप्रियावदान, पृ० ६३, सुधनकुमारावदान पृ० २८७।

(४) क्रीडापरिणका[1] या क्रीडनिका[2]—जो बच्चों को अनेकों खेल खिलाती थी ।

इन चार प्रकार की धात्रियो का वर्णन "रूपावत्यवदान" मे इन शब्दों में प्राप्त होता है—

"अङ्कधात्रीत्युच्यते या दारकमङ्केन परिकर्षयति, अङ्गप्रत्यङ्गानि च संस्थापयति । मलधात्रीत्युच्यते या दारकं स्नपयति, चीवरकान्मलं प्रपातयति । स्तन्यधात्र्युच्यते या दारकं स्तन्यं पाययति । क्रीडापनिकाधात्र्युच्यते यानि तानि दारकाणां दक्षकाणां तरुणकाना क्रीडापनिकानि भवन्ति "।[3]

प्रसूता स्त्री "जनिका" "कहलाती थी ।[4]

माता के प्रति पुत्रो का स्नेह और आदर भाव दिखाई पड़ता है । कुणाल हमे उस आदर्श पुत्र के रूप मे दिखाई पड़ता है जो विमाता के प्रति भी अपनी सगी माता का सा व्यवहार करता है ।

नारी के प्रति दृष्टिकोण

[१] दोष

समाज मे नारियो को अतिहीन दृष्टि से देखा गया है । "माकन्दिकावदान" मे परिव्राजक माकन्दिक के द्वारा रूपोपपन्ना वस्त्रालङ्कार-विभूषिता अपनी कन्या अनुपमा को भगवान् बुद्ध के लिये प्रदान किये जाने पर, भगवान् बुद्ध उस से कहते हैं—"हे ब्राह्मण तृष्णा, असन्तोष, और काम-विकार देख कर स्त्रियो की सगति मुझे अच्छी नही लगती ।" वे उसके शरीर को "मूत्रपुरीषपूर्ण" बतलाते है और कहते है कि प्राज्ञधी ऐसे अशुचि पदार्थों से पूर्ण शरीर का स्पर्श पैरो से भी नही करते ।[5]

---

१. रूपावत्यवदान, प० ३१० ।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५ ।, सुप्रिया०, पृ० ६३ । सुधन०, पृ० २८७ ।
३. रूपावत्यवदान, पृ० ३१० ।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६ ।
५. माकन्दिकावदान, पृ० ४४६ ।

स्त्रियों के दुर्गुणो के अन्य उदाहरण भी प्राप्त होते हैं । वैदिक-काल, रामायण एवं महाभारत काल तक पति-पत्नी दोनो का अपनी-अपनी अनर्गल अनियन्त्रित भोग-प्रवृत्तियों को आत्मसात कर आत्मसंयम एव आत्मत्याग के कुशलानुष्ठान नैरन्तर्य द्वारा आध्यात्मिक प्रगति की प्रवृत्ति के उदात्त दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं । इस प्रकार उनका पारस्परिक पूत संबन्ध सामाजिक उत्तरदायित्वो के वहन करने का एक प्रतिज्ञा रूप था, जहाँ वासना के दंश का लेश तक न था । किन्तु बौद्ध-काल में आ कर यह भावना लुप्त हो गई और उनका संबन्ध केवल यौन मात्र सीमित रह गया ।

स्त्रियों का हृदय काम के अधीन रहता है ।[1] "धर्मरुच्यवदान" में किसी महाश्रेष्ठी के धनार्थ देशान्तरगमन करने पर जब वह बहुत दिनो तक नही लौटता, तो उसकी पत्नी काम सन्ताप से क्लेशित हो अपने वयस्क पुत्र के साथ प्रच्छन्न रूप से एक वृद्धा के घर चिरकाल तक रति-क्रीडा करती है । किन्तु इस भेद के ज्ञात होने पर वह दारक विमूढ एव विह्वलचित्त हो भूमि पर विमूर्छित हो जाता है । तदनन्तर उसकी माता जलघट-परिषेक द्वारा अवसिक्त कर सचेत होने पर, बहुविध अनुनय वचनो द्वारा उसे पुनः पातक असद्धर्म मे प्रवृत्त करती है । कालान्तर मे श्रेष्ठी के आने पर अपने पुत्र को उसका वध कर डालने के नृशंस कार्य के लिये प्रेरित करती है ।[2]

भोगों का निरन्तर आस्वादन उनमे आसक्ति का कारण होता है । स्त्रियाँ अस्थिर चित्त वाली होती है । यही कारण है कि इसके बाद वह दुष्टा पुनः एक श्रेष्ठि-पुत्र के प्रति प्रच्छन्न रूप से असद्धर्म मे अनुरक्त चित्त वाली होती है । "रामायण" मे भी स्त्रियों को अस्थिर चित्त वाली कहा गया है ।[3]

इस युग मे नारी सार्वजनिक उपयोग की वस्तु मानी गई । इस अवदान मे पुत्र को विषाद करने से रोकती हुई उसकी माँ स्त्रियो को पथ-

---

१. "असातमन्त जातक" में भी कहा गया है कि स्त्रियों के काम-वैकल्य में संयम, मर्यादा, एवं सन्तुष्टि की सीमा का बाँध ढह जाता है "वेला तासं न विज्जति ।"
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५९ ।
३. "अनित्यहृदया हि ता " २ । ३९ । २०-२३

सदृश और तीर्थ के समान बतलाती है ।[1] इस प्रकार स्त्री को ऐश आराम की वस्तु समझना या उसे एक खिलौना समझ कर जीवन भर उसके साथ खिलवाड़ करना मानव की वर्बरता का स्पष्ट परिचायक है ।

स्त्रियो की जघन्यता के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं । स्त्री की चारित्रिक हीनता यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि वह अपने पुत्र तक से प्रणय याचना करने मे नही हिचकती थी । "कुणालावदान" मे अशोक-पत्नी तिष्यरक्षिता सपत्नी-पुत्र कुणाल से प्रणय याचना करती है । वह कहती है—

> "दृष्ट्वा तवेदं नयनाभिरामं,
> श्रीमद्‌वपुर्नेत्रयुग च कान्तम् ।
> दंदह्यते मे हृदय समन्ता—
> द्दावाग्निना प्रज्वलतेव कक्षम् ॥"

किन्तु कुणाल के इसका विरोध करने पर वह प्रणयतिरस्कृत तिष्यरक्षिता क्रुद्ध हो अपना प्रतिशोध लेने के लिये कुणाल के दोनो नेत्र निकाल लेने का क्रूर आदेश प्रेषित करती है ।[2]

"चूडापक्षावदान" से वृद्धावस्था के कारण नेत्र-ज्योति विहीन ब्राह्मण के बारह पुत्रो की स्त्रियाँ अपने-अपने स्वामियो की अनुपस्थिति मे परपुरुषो के साथ अवैध सवन्ध स्थापित करती थी ।[3]

एक दूसरे स्थान पर, पण्य ले कर महासमुद्रावतरण करने के लिये उद्यत एक गृहपति के मन मे, अपनी पत्नी को प्रभूत कार्षापण प्रदान करने मे यह बात ख़टकती है कि "यद्यहमस्मै प्रभूतान् कार्षापणान् दास्यामि, परपुरुषैः सार्धं विहरिष्यति" जिससे वह अपने वयस्य श्रेष्ठी को कार्षापण दे जाता है और उससे कहता है "यदि मम पत्न्या भक्ताच्छादेन योगोद्‌वहन कुर्याः"।

---

१. पन्थासमो मातृग्रामः । येनैव हि यथा पिता गच्छति, पुत्रोऽपि तेनैव गच्छति । न चासौ पन्था पुत्रस्यानुगच्छतो दोषकारको भवति, एवमेव मातृग्रामः । तीर्थसमोऽपि च मातृग्रामः । यत्रैव हि तीर्थे पिता स्नाति, पुत्रोऽपि तस्मिन् स्नाति, न च तीर्थं पुत्रस्य स्नायतो दोषकारकं भवति एवमेव मातृग्रामः ।" । पृ० १५६ ।

२. कुणालावदान, पृ० २६४ ।

३. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४ ।

"माकन्दिकावदान' मे सभी स्त्रियो को राक्षसी वतलाया गया है, "सर्वा एव स्त्रियो राक्षस्यः"।[1]

स्त्रियों को आपस मे फूट डालने वाली कहा गया है, "सुहृद्भेदकाः स्त्रियो भवन्तीति"। "पूर्णावदान" मे भव गृहपति अपने पुत्रों को आदेश देता है कि मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम लोग अपनी-अपनी स्त्रियो के कथनानुसार कार्य न करना। इस सबन्ध मे वह इस तथ्य का निरूपण करता है—

> "कुटुम्बं भिद्यते स्त्रीभिर्वाग्भिर्भिद्यन्ति कातरा :।
> दुर्न्यस्तो भिद्यते मन्त्रः प्रीतिर्भिद्यति लोभतः ॥[2]

रामायण मे भी स्त्रियो के अवगुण मे "भेदकराः स्त्रियः" की चर्चा है।[3]

स्त्रियो का स्वभाव ईर्ष्यालु होता है—"ईर्ष्याप्रकृतिर्मातृग्रामः"। "माकन्दिकावदान" में अनुपमा अपनी सपत्नी श्यामावती के रन्ध्रान्वेपण मे दत्त-चित्त रहती है। वह महाराज उदयन को श्यामावती के विरुद्ध उत्तेजित करती है और अन्ततोगत्वा अपने पिता माकन्दिक से श्यामावती को मार डालने के लिये कहती है, जिससे वह उपाय द्वारा श्यामावती प्रमुख ५०० स्त्रियो को जला कर नष्ट कर देता है। यह प्रसग उस समय के सापत्न्य भाव का स्पष्ट प्रदर्शन करता है।

भगवान् बुद्ध के "मूत्रपुरीपपूर्णा" कहने पर अनुपमा अपनी इस निन्दा को सुन क्रोधित हो उठती है और राग का स्थान द्वेप ग्रहण कर लेता है, जिसका परिणाम श्यामावती प्रमुख ५०० स्त्रियो का विनाश होता है।

प्रणय-याचना के ठुकरा दिये जाने पर तिष्यरक्षिता द्वारा प्रतिशोध-रूप मे कुणाल के दोनो नेत्रों का निकलवा लेना स्त्री की द्वेप-वुद्धि को ही प्रकट करता है।[4]

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५३।
२. पूर्णावदान, पृ० १७।
३. रामायण ३। ४५। २९-३०
४. कुणालावदान, पृ० २६४।

[२] गुण

नारी के इन दोषो के अतिरिक्त उसके कुछ गुणों का भी वोध होता है।

पत्नी, पति के साथ केवल सुख के दिनो मे ही नही रहती, वह उसके दुर्दिन में भी हाथ वटाने वाली सहचरी होती है। वह अपना जीवन पति-सेवा मे अर्पित कर देने मे गौरव समझती है। यही भारतीय ललना की निजी विशेषता रही है, जिसका पावन प्रकाश भारतीय-सस्कृति के उज्जवल स्वरूप को सदा प्रद्योतित करता रहा है। कांचनमाला अपने पति कुणाल के "स्वय कृतानामिह कर्मणा फलमुपस्थितम्" कहने से शान्त रह जाती है और उन दुष्कर्म करने वालो के प्रति विद्रोह नही करती, अपितु अपने पति के साथ-साथ भिक्षा माँगती हुई तक्षशिला से निकल पड़ती है,[१] जो पति के प्रति उसकी ऐकान्तिक निष्ठा और सेवाभावना को व्यक्त करती है।

पति के भोजनोपरान्त भोजन करना भारतीय नारी की मर्यादा रही है। गृहपति के द्वारा अपने भोजन का अंश प्रत्येक वुद्ध को दे दिये जाने पर, उसकी पत्नी विचार करती है—

"मम स्वामी न परिभुंक्ते, कथमहं परिभोक्ष्य इति"।[२]

स्त्रियाँ वेकार रहना उचित नही समझती थी। अतः वे किसी न किसी छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे का सम्पादन करती थी, और इस प्रकार धनोपार्जन मे अपने स्वामी का हाथ वटाती थी। 'ज्योतिष्कावदान' मे चम्पा नगरी के एक ब्राह्मण की पत्नी ऐसा ही विचार करती है।[३]

विदुषी स्त्रियो में पञ्च आवेणिक (परम्परानुगत स्वाभाविक) धर्म होते थे।[४]

---

१. कुणालावदान, पृ० २६७।

२. मेण्ढकावदान, पृ० ८३।

३. "अयं ब्राह्मणो यैस्तैरुपायैर्धनोपार्जनं करोति। अहं भक्षयामि। न मम प्रतिरूपं यदहमकर्मिका तिष्ठेयमिति।" पृ० १७०।

४ कोटिकर्णावदान, पृ० १।

(१) अनुरक्त एवं विरक्त पुरुष का ज्ञान ।

(२) काल एवं ऋतु का ज्ञान ।

(३) गर्भ-स्थापन (स्थिति) का ज्ञान ।

(४) जिस(व्यक्ति) से गर्भस्थिति होती है, उसका ज्ञान ।

(५) गर्भस्थ दारक-दारिका परिज्ञान । (गर्भ के दक्षिण कुक्षि का आश्रयण पुत्र एव वाम कुक्षि का आश्रयण पुत्री होने का परिचायक है ।)

पर्दा-प्रथा

राज-परिवार की महिलाएँ अन्तः पुरों मे रहती थी, वाहर जन समूह के मध्य नही निकलती थी । वे लज्जावती होती थी । रुद्रायण के, अपनी अन्तः पुरिकाओ से धर्म-श्रवण के लिए कहने पर, वे कहती हैं—

"देव वयं ह्रीमन्त्यः । कथं वयं तत्र गत्वा धर्मं शृणुमः । यद्यार्यो महाकात्यायन इहैवागत्य धर्मं देशयेत्, एवं वयमपि शृणुयाम इति" ।[1]

एक अन्य स्थल पर प्रव्रज्या-ग्रहण के अनन्तर रुद्रायण के राजगृह मे भिक्षाचरणार्थ प्रविष्ट होने पर स्त्रियाँ उसे वातायनगवाक्षादिको से देखती हैं । वे वाहर नही निकलती । उन्हे "अन्तर्भवनविचारिणी" कहा गया है ।[2]

रामायण मे भी यह प्रथा दृष्टिगोचर होती है ।[3]

O

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६ ।

२. वही, पृ० ४७३ ।

३ या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि ।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ।।" (६।१२८।१७)

परिच्छेद ६

नगर एवं प्रासाद

तत्कालीन मनोरम एवं वैभवशाली नगर और प्रासादों का निर्माण यह स्पष्ट करता है कि उस काल मे स्थापत्य का समुचित विकास हो चुका था। प्रसिद्ध स्थपति देवपुत्र विश्वकर्मा का उल्लेख प्राप्त होता है। देवेन्द्र, शक्र उन से अनङ्गण गृहपति की सहायता करने के लिए कहते हैं। फलस्वरूप वह विशिष्ट प्रकार की नगर-शोभा एव दिव्य मडलवाट (वगीचा) का निर्माण करते हैं।[1]

नगरो का विस्तार बहुत दूर-दूर तक होता था। कनकावती राजधानी पूर्व और पश्चिम से बारह योजन लम्बी एव उत्तर और दक्षिण से सात योजन चौड़ी थी। राजा कनकवर्ण के राज्य मे अस्सी हजार नगर, अठारह करोड कुल, सत्तावन करोड ग्राम और साठ हजार कर्वटक थे।[2] इसी प्रकार भद्रशिला नगरी भी बारह योजन लम्बी और बारह योजन चौड़ी थी।[3]

ये नगरियाँ ऊँचे-ऊँचे प्राकारो (चहारदीवारियो) से घिरी रहती थी। एक बार भद्रंकर नगर मे भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ अपार जन-काय एक साथ ही निकलने लगा, जिस से अपार भीड़ हो जाने से उन के जाने में असुविधा होने लगी। फलतः वज्रपाणि यक्ष के द्वारा वज्र फेक कर प्राकार भग्न कर दिये जाने की चर्चा है, जिस से कई सौ हजार प्राणी एक साथ ही निकल गये।[4]

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७८।
२. कनकवर्णावदान, पृ० १८०।
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान पृ० १९५।
४. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८०।

त्रायस्त्रिश देवो का सुदर्शन नामक नगर ढाई सहस्र योजन लम्बा और ढाई सहस्र योजन चौडा वतलाया गया है। यह नगर दस सहस्र योजन वाले सात सुवर्णमय प्राकारों से घिरा हुआ था तथा ये प्राकारें ढाई योजन ऊँची वतलाई गई है। यह इस लोक के किसी नगर का वर्णन नही अपितु देव-लोक के एक नगर का वर्णन है।[१]

नगरो मे प्रविष्ट होने के लिए कई द्वारा होते थे, जिनमे से एक मूल द्वार होता था। सूर्पारक नगर मे अठारह द्वारो के होने का उल्लेख है।[२] साधारणतः चार द्वार होते थे, जो उच्च तोरण, गवाक्ष, वातायन, तथा वेदिकाओ से मडित रहते थे।[३]

नगरो मे उद्यान, प्रस्रवण, तडाग एवं कूपो का निर्माण देखने को प्राप्त होता है। उद्यान मे अनेको प्रकार के वृक्ष लगाये जाते थे और नाना प्रकार के पक्षि-गण कूजन किया करते थे। ताल, तमाल, कर्णिकार, अशोक, तिलक, पुंनाग, नागकेसर, चपंक, वकुल, पाटलादि पुष्पों से आच्छादित एवं कलविंक, शुक, शारिका, कोकिल, मयूर, जीवजीवक आदि नानाविध पक्षि-गण निकूजित भद्रशिला का वनपण्डोद्यान हठात् चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। तत्रस्थ मणिगर्भ राजोद्यान का मनोरम दृश्य भी अवलोकनीय है।[४] भद्रशिला राजधानी मे प्रस्फुटित पद्म, कुमुद, पुण्डरीक तथा रमणीय कमल-पुष्प-मंडित स्वादु, स्वच्छ एव शीतल जल परिपूर्ण तडाग, कूप एवं प्रस्रवण का भी नयनाभिराम दर्शन होता है।[५]

तीन प्रकार के उद्यानो का निर्माण कराया जाता था, जिन में ऋतुओं के अनुसार पुष्पादि वृक्ष लगे होते थे[६]—

(१) हैमन्तिक
(२) ग्रैष्मिक
(३) वार्षिक

---

१. मान्धातावदान, पृ० १३६।
२. पूर्णावदान, पृ० २७।
३. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५।
४. वही, पृ० १९५।
५. वही, पृ० १९५।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।

इन नगरों में मार्गो की विशिष्ट योजना होती थी। मार्गो मे वीथी[1], पन्थलिका[2], रथ्या[3], चत्वर[4], शृंगाटक[5] आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। चतुर्महापथ[6] का भी वर्णन है, जहाँ चार बड़े-बड़े रास्ते आ कर मिलते थे। भद्रशिला नगरी मे इन मार्गो पर चन्दनादि सुगन्धित पदार्थो से युक्त सुरभित समीर का प्रसार चतुर्दिक हो रहा था।[7]

किसी उत्सव या किसी के स्वागत मे इन मार्गो की विशेष सजावट की जाती थी। इसके लिए "मार्गशोभा"[8] शब्द प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार नगर की सजावट के लिए "नगर शोभा"[9] शब्द भी प्राप्त होता है। नगर एवं मार्गो की सजावट के लिए उन्हे कंकड, पत्थर वालुकादि से रहित कर चन्दन-वारि-सिक्त कर दिया जाता था। नगर मे ध्वज-पताकाएँ फहराती थी। सुरभिधूप-घटिका रख दी जाती थी तथा नानाविध पुष्प विखेर दिये जाते थे।[10]

हर वस्तु के लिए अलग-अलग स्थान नियत था। यदि किसी को भृतक (मजदूर) की आवश्यकता पडती थी, तो उसके लिए एक नियत स्थान था, जहाँ वे काम की खोज में वैठे मिलते थे। "सहसोद्गतावदान" में "भृतकवीथी" का उल्लेख है, जहाँ से लोग भृतको को ले जाया करते थे।[11]

---

१. स्वागतावदान, पृ० ११७।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १७१।
चन्द्रप्रभ०, पृ० १९५।
२. चूडापक्षावदान, पृ० ४२९।
३. वही, पृ० ४३३।
४. वही, पृ० ४३३।, चन्द्रप्रभ०, पृ० १९५।
५. चन्द्रप्रभ०, पृ० १९५। चूडापक्षावदान, पृ० ४३३।
६. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
७. चन्द्रप्रभ०, पृ० १९५।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४४४। रुद्रायणावदान, ४६७,६८,६९,७२।
९. रुद्रायणावदान, पृ० ४६९, ७२।
१०. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६-८७। ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७।
११. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।

"गृहस्योपरितल"[1] या "उपरिप्रासादतल"[2] यह प्रकट करता है कि मकान कई मंजिलो का होता था। गृहों में निर्मुक्त वायु के आने-जाने के लिए गवाक्ष एवं वातायनादि होते थे। इन खिड़कियों का मुख सड़क की तरफ होता था। प्रव्रज्या-ग्रहण के अनन्तर रुद्रायण के राजगृह मे भिक्षाचरणार्थ प्रविष्ट होने पर स्त्रियाँ उसे वातायन, गवाक्षादिकों से देखती हैं।[3]

राजघरानों एव समृद्धिशाली व्यक्तियो के यहाँ ऋतुओ के अनुसार तीन प्रकार के गृहों का उल्लेख प्राप्त होता है[4]—

(१) हैमन्तिक—हेमन्त और शिशिर ऋतु के उपयुक्त गृह

(२) ग्रैष्मिक—वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के उपयुक्त गृह

(३) वार्षिक— वर्षा और शरद् ऋतु के उपयुक्त गृह

गृहो मे आँगन भी होते थे। मातंगदारिका प्रकृति की माँ गृह में आँगन के बीच गोबर का लेप देकर आनन्द के चित्त को आक्षिप्त करने के लिए मंत्रों का उच्चारण करती है।[5]

गृहो मे अनेक आगारो, शालाओं एव कक्षादिकों का उल्लेख हुआ है—

(१) कोष्ठागार[6]—समान एकत्र कर रखने का स्थान।

(२) कूटागार[7]—घर की छत के ऊपर का कमरा।

(३) भाण्डागार[8]—घर की वस्तुओ और वर्तन आदि के रखने का कमरा।

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७१।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २। ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।
५. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४।
६. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
७. वही, पृ० ४७४।
८. अशोकावदान, पृ० २७९।

(४) पानागार[1]—जहाँ लोग मद्यादि पानो का सेवन करते थे।

(५) शोकागार[2]—जहाँ मनुष्य शोक युक्त हो निवास करता था।

(६) स्नानशाला[3]—स्नान-गृह।

(७) दानशाला[4]—दान देने का स्थान।

(८) उपस्थानशाला[5]—लोगों के एकत्र होने का वह स्थल जहाँ उन्हें कोई उपदेश या आदेश दिया जाता था।

(९) कुलोपकरण शाला[6]—कक्ष-विशेष।

(१०) शुल्क शाला[7]—जहाँ व्यापार की वस्तुओं पर शुल्क-ग्रहण किया जाता था।

(११) यान शाला[8]—विभिन्न यानों के रखने का स्थान।

(१२) लेख शाला[9]—विद्या प्राप्त करने का स्थान।

(१३) लिपिशाला[10]—जहाँ बालक लिपि-शिक्षा ग्रहण करता था।

(१४) कुतूहल शाला[11] – मनोविनोद करने का बडा कमरा।

(१५) मन्दुरा[12] – घोडो के रहने का स्थान।

(१६) महानस[13]—रसोई घर।

---

१. स्वागतावदान, पृ० १०८।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७।
३. वीतशोकावदान, पृ० २७२।
४. मैत्रेयावदान, पृ० ३६। माकन्दिकावदान, पृ० ४६२।
५. मान्धातावदान, पृ० १२८।
६. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७८।
७. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।
८. कुणालावदान, पृ० २६७।
९. स्वागतावदान, पृ० १०६।
१०. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
११. प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ८९।
१२. चूडापक्षावदान, पृ० ४४३।
१३. वही, पृ० ३३५।

(१७) यन्त्रगृह[1]—जहाँ लोगो को अपराध के दंड स्वरूप कष्ट झेलने के लिए डाल दिया जाता था।

इन गृहों एवं शालाओं के अतिरिक्त हाट मे दूकानें होती थीं, जहाँ विक्री की वस्तुएँ रखी जाती थी। दूकानों को "आवारी"[2] या "आपण"[3] कहते थे।

स्तूपो का भी बुद्धकालीन भवनों में विशेष स्थान है।

o

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २४० ।, माकन्दिकावदान, पृ० ४६० ।
२. पूर्णावदान, पृ० १६,१७ ।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६६ ।, धर्मरुच्यवदान, पृ० १५७।

परिच्छेद १०

लोक-मान्यताएँ

[क] यक्ष

यह प्रसिद्धि थी, कि जेतवन मे पाँच सौ नीले वस्त्र धारी यक्ष निवास करते हैं।[1] यक्ष-समिति मे खगपथ से जाते हुए महाराज वैश्रवण यक्ष के यान के रुक जाने का उल्लेख है।[2] भगवान् बुद्ध के दर्शन के लिए समस्त भद्रंकर निवासी जब एक साथ जाने लगे, तो उनकी सुविधा के लिए वज्रपाणि नामक यक्ष ने वज्र फेंक कर प्राकार तोड दिया था।[3] गोशीर्षचन्दन वन महेश्वर यक्ष द्वारा परिग्रहीत था। वहाँ पर पाँच सौ वणिकों को कुठार धारण किये हुए देखकर वह क्रुद्ध हो महान् कालिकावात छोड़ता है।[4]

[ख] किन्नर

सार्थवाह सुप्रिय बदरद्वीप की यात्रा करते समय क्रमशः सौवर्ण, रूप्यमय, वैडूर्यमय तथा चतूरत्नमय किन्नर-नगरो मे जाता है। वहाँ उसे किन्नर-कन्याएँ मिलती है, जो "अभिरूपा", "दर्शनीया", "प्रासादिका", चातुर्य-माधुर्यसपन्ना", "सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेता", "परमरूपाभिजाता" तथा हास-रमण-परिचरण-नृत्य-गीत-वादित्रकला विशारदा थी। वे उससे कहती हैं—

"एतु महासार्थवाहः। स्वागतं महासार्थवाह। अस्माकमस्वामिनीनां स्वामी भव, अपतीनां पतिरलयनानां लयनोऽद्वीपानां द्वीपोऽशरणानां शरणोऽत्राणानां त्राणोऽपरायणानां परायणः।.........त्वं चास्माभिः सार्धं क्रीडस्व रकमस्व रिचारयस्व।"[5]

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४७।

२. सुधनकुमारावदान, पृ० २९०।

३. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८०।

४. पूर्णावदान, पृ० २५।

५. सुप्रियावदान, पृ० ७२-७३।

ब्रह्मसभा नाम की पुष्करिणी मे किन्नरराज द्रुम की पुत्री मनोहरा पाँच सौ किन्नरी परिवारो के साथ स्नान के लिए जाती थी। स्नान काल मे मधुर गीत वादित ध्वनि होती थी।[1]

इस प्रकार किन्नर एक ऐसी जाति थी, जो शृंगारिक क्रीड़ाओं और गीतो मे मग्न रहती थी। किन्नरियाँ शारीरिक सौन्दर्य मे अप्रतिम होती थी। मनोहरा किन्नरी को अष्टादश स्त्री-लक्षणो से समलकृत बतलाया गया है।[2]

[ग] अप्सरा

अप्सराएँ सौन्दर्य और विशिष्ट आकर्षणों की केन्द्र समझी जाती थी। मैत्रकन्यक घूमते हुए क्रमशः रमण, सदामत्तक, नन्दन और ब्रह्मोत्तर नामक नगरो में जाते हैं, जहाँ कनकवर्ण विकसित कमल के समान चारु नेत्रो वाली, शब्द करने वाली विविध मणि-मेखला धारण करने के कारण मन्द विलास गतियो वाली, कनक-कलशाकार-पृथु-पयोधर भार से अवनमित मध्य भागो वाली, कमल-पलाश सदृश भास्वरित अधर किशलयो वाली तथा अनेक आभूषणों से अलंकृत अप्सराएँ उनका स्वागत करती हैं। वहाँ उन अप्सराओं के सविलास गमन, लीला युक्त हास, कटाक्ष और मधुर प्रलापो के साथ क्रीडा करते हुए उसे समय के व्यतीत होने का भान नही होता।[3]

श्रोण कोटिकर्ण प्रेतनगर में एक पुरुष को सौन्दर्यशालिनी चार अप्सराओ के साथ क्रीड़ा करते हुए देखता है।[4] अप्सराओ का सेवन दिव्य सुख कहा गया है।[5]

[घ] राक्षस

ये समुद्र-तट के निवासी थे। इनका प्रधान निवास स्थान दक्षिण भारत का समुद्री किनारा और लंका द्वीप था। रत्नद्वीप मे क्रौचकुमारिका नाम

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
२. वही, पृ० २८८।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४,५०६।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० ५।
५. वही, पृ० ६,७।

की राक्षसी स्त्रियो के निवास करने का उल्लेख है।[1] ताम्रद्वीप में भी राक्षसियों के वास करने की चर्चा है।[2]

राक्षसों की नर-मांस भक्षण के प्रति बर्बरों की सी प्रवृत्ति से यह निश्चय होता है कि यह एक घृणित, कुरूप एवं विकृत जाति थी। ताम्रद्वीप निवासिनी राक्षसियाँ पाँच सौ वणिको को खा जाती हैं और राक्षसी सिंहल-भार्या से वे कहती है कि हम लोगों ने अपने-अपने स्वामियों को खा लिया, तुम भी अपने स्वामी को ले आओ अन्यथा हम सब तुम्ही को खा जाँयगी।[3] राक्षसियो द्वारा अन्तःपुर सहित सिंहकेसरी राजा के भी खा लिए जाने का उल्लेख हुआ है।[4]

राक्षस स्वेच्छानुसार अपने रूपों को बदलते रहते हैं। जब राक्षसियाँ राक्षसी सिंहलभार्या से अपने स्वामी को ले आने के लिए कहती हैं, तो वह परमभीषण रूप धारण कर धीरे-धीरे सार्थवाह सिंहल के आगे जाती है।[5] राक्षसियाँ विकृत हाथ, पैर तथा नखों वाले अत्यन्त भैरव रूप का निर्माण कर सिंहकल्पा राजधानी मे अन्तःपुर सहित राजा सिंहकेसरी का भक्षण करने जाती है।[6]

इनका रूप मनुष्य से भिन्न होता था तथा ये मायाविनी होती थी। राक्षसी सिंहलभार्या अतीव रूप यौवन सपन्न महासुन्दरी मानुषी स्त्री का रूप धारण कर एव सिंहल के सदृश अत्यन्त सुन्दर पुत्र का निर्माण कर और उस पुत्र को लेकर सिहकल्पा राजधानी मे जाती है।[7]

[ङ] अपशकुन

धूमान्धकार, उल्कापात, दिशोदाह और अन्तरिक्ष मे देव-दुन्दुभि-नाद आदि

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।
३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।
४. वही, पृ० ४५४।
५. वही, पृ० ४५१।
६. वही, पृ० ४५४।
७. वही, पृ० ४५३।

किसी महापुरुष के विनाश सूचक माने जाते थे। रौद्राक्ष ब्राह्मण के राजा के शिरोयाचनार्थ गन्धमादन पर्वत से उतरने पर ऐसे ही अशिव निमित्तो का दर्शन होता है, जिससे विश्वामित्र ऋषि यह अनुमान करता है कि निश्चय ही किसी महापुरुष का विनाश होगा।[1]

अभद्र एव भयावह स्वप्न भी अनिष्ट के कारण समझे जाते थे।[2]

[च] धार्मिक-अन्धविश्वास

समाज मे धार्मिक अन्धविश्वास भी प्रचलित था। राजा धन एक भयानक स्वप्न का निवेदन अपने ब्राह्मण पुरोहित से करता है। वह स्वप्न को अनिष्टकारी बतलाकर राजा से तत्प्रशमनार्थ अनेक कार्यानुष्ठानो का निर्देश कर, अन्त मे कहता है—"किन्नरवसया च धूपोदेय:"। जब राजा किन्नरमेद-प्राप्ति-दौर्लभ्य प्रकट करता है तो वह पुरोहित राजकुमार सुधन की एकमात्र प्रीतिकेन्द्र-भूता प्राणाधिक प्रिया किन्नरराजदुहिता मनोहरा को तद् सम्पादनार्थ समुचित बतलाता है। किन्तु राजा के द्वारा इसका निषेध किये जाने पर वह अनेक तर्कों द्वारा उनको अनुकूल करता है, जिससे राजा धन वैसा ही करने को तत्पर हो जाते हैं।[3]

समाज मे ब्राह्मणो ने कितना आडम्बर फैला रखा था, यह उस समय ज्ञात होता है, जब ब्राह्मण पुरोहित राजा के अनिष्टकारक स्वप्न के प्रतिकारोपाय का एक विस्तृत वर्णन करता है—

"देव, उद्याने पुष्करिणी पुरुषप्रमाणिका कर्तव्या। ततः सुधया प्रलेप्तव्या। सुसमृष्टां कृत्वा क्षुद्रमृगाणां रुधिरेण पूरयितव्या। ततो देवेन स्नानप्रयतेन तां पुष्करिणीमेकेन सोपानेनावतरितव्यम्, एकेनावतीर्य द्वितीयेनोत्तरितव्यम्, द्वितीयेनोत्तीर्य तृतीयेनावतरितव्यम् तृतीयेनावतीर्य चतुर्थेनोत्तरितव्यम्। ततश्चतुर्भिर्ब्राह्मणैर्वेदवेदाङ्गपारगैर्देवस्य पादयोर्जिह्वया निर्लेढव्यम्, किन्नरवसया च धूपो देयः। एवं देवो विधूतपापश्चिरं राज्यं पालयिष्यतीति।"[4]

---

१. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९८।
२. कुणालावदान, पृ० २६४।, सुधनकुमारावदान, पृ० २९१।
३. सुधनकुमारावदान, पृ० २९१।
४. वही, पृ० २९१।

एक स्थल पर अन्तर्वर्तिनी ब्राह्मणी को सदा अतृप्त देख ब्राह्मण सोचता हैं कि इसे कोई रोग तो नही हो गया अथवा भूतग्रहादि का आवेश तो नही हुआ कि वा मरणलिंग प्रत्युपस्थित हुआ है।[1] इस प्रकार उसकी शंका तथा भूततन्त्रविदो का अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि लोगों का भूतप्रेतादि मे भी विश्वास था।

[छ] प्रवाद

कल्पान्त में सप्त सूर्योदय की जनश्रुति लोगो मे प्रसिद्ध थी। रत्नद्वीप से रत्नों का ग्रहण कर वणिक्जन जम्बुद्वीप की तरफ प्रत्यावर्तन करते समय तिमिंगिल मत्स्य के उभय नेत्रों को दो सूर्यो के सदृश देखते हैं तथा यानपात्र (जहाज) को अतिवेग से उसके द्वारा अपह्रियमाण देखकर सोचते है—

"किं भवन्तो यत् तच्छ्रूयते सप्तादित्याः कल्पसंवर्तन्यां समुदागमिष्यन्तीति, तदेवेदानीं प्रोदिता स्युः"।[2]

यह भी प्रचलित था, कि जेतवन मे ५०० नीले वस्त्रधारी यक्ष निवास करते है। जव कोई गृहपति धर्मरुचि भिक्षु को अपने सर्व आहारो का भक्षण कर लेने पर भी अतृप्त देखता है, तो वह उसे उन्ही ५०० यक्षो मे से एक समझता है।[3]

उस समय यह प्रवाद प्रचलित था कि देव-याचन द्वारा पुत्र एवं पुत्री की प्राप्ति होती है।[4] सन्तानप्राप्त्यर्थ शिव, वरुण, कुवेर, वासवादि तथा अन्य भी कई अनेक देवताओ की उपासना की जाती थी, जैसे—आरामदेवता, वन-देवता, चत्वरदेवता, शृङ्गाटकदेवता और वलिप्रतिग्राहिक देवता। परन्तु यह ठीक नही; क्योंकि ऐसा होने पर तो चक्रवर्ती राजा के समान प्रत्येक को सहस्रो पुत्र होते। त्रिपुटी का संमुखीभाव ही गर्भावक्रान्ति मे कारण होता है। तीन के सघ को त्रिपुटी कहते है। इनके अन्तर्गत निम्न त्रय[5] की गणना की गई है—

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४५।
२. वही, पृ० १४३।
३. वही, पृ० १४७।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० १ ।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।
५. वही, पृ० १ ।, वही, पृ० २८६।

[१] माता-पिता का परस्पर अनुरक्त एवं एकत्रित होना

[२] माता का कल्या (निरोग) एवं ऋतुमती होना

[३] गन्धर्व की प्रत्युपस्थिति

[ज] निमित्त

समाज में ऐसे व्यक्ति भी रहते थे, जो शुभाशुभ निमित्तों द्वारा तदनुरूप फलाफलो का विवेचन भी सम्यक् प्रकारेण करते थे। ऐसे व्यक्ति "नैमित्तिक" द्वारा अभिहित किये जाते थे। बोध गृहपति की पत्नी के आपन्नसत्त्वा होने पर अनेक अनर्थ प्रकट होने लगते हैं। बोध गृहपति नैमित्तिको को बुलाकर अनर्थ का कारण पूछता है।[१]

"पांशुप्रदानावदान" मे नैमित्तिक ब्राह्मण की कन्या के भविष्य के बारे मे बताते है कि इस दारिका का पति कोई राजा होगा तथा यह दो पुत्र रत्नो को जन्म देगी, जिनमे से एक चक्रवर्ती राजा होगा और दूसरा प्रव्रजित होकर सिद्धव्रत संन्यासी।[२]

समाज मे लक्षणज्ञ, नैमित्तिक, भूम्यन्तरिक्षमंत्र-कुशल ब्राह्मणो का भी अस्तित्व था। राजा कनकवर्ण के नक्षत्र विषम हो जाने पर ऐसे ही ब्राह्मण उनके पास आते है, जो यह सूचित करते हैं कि बारह वर्ष तक अनावृष्टि रहेगी।[३] इस प्रकार निमित्तो के सर्वातिशायी प्रभाव मे तत्कालीन समाज की अटल आस्था थी।

स्वप्नो के फल मे भी सार्वजनीन विश्वास था। इनसे भावी घटनाओ की पूर्व-सूचना प्राप्त होती थी। राजा अशोक स्वप्न मे कुणाल के नेत्रो को निकालने के इच्छुक दो गीधो को देखते है; दीर्घ केश, नख, श्मश्रु धारण किए हुए कुणाल को नगर मे प्रविष्ट होते देखते हैं तथा दांतो का गिरना देखते है, जिससे वह भयत्रस्त हो रात्रि के समाप्त होते ही नैमित्तिकों को बुलाकर इन स्वप्नो के विपाक (फल) के बारे मे पूछते हैं।[४]

---

१. स्वागतावदान, पृ० १०४।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३२।
३. कनकवर्णावदान, पृ० १७१।
४. कुणालावदान, पृ० २६४।

राजा चन्द्रप्रभ के विनाश की सूचना देने वाले स्वप्नों को उनके अमात्य गण देखते है। महाचन्द्र अग्रामात्य यह स्वप्न देखता है कि धूमवर्ण पिशाच ने राजा चन्द्रप्रभ का सिर अलग कर दिया। महीधर नामक अग्रामात्य राजा चन्द्रप्रभ के सर्व रत्नमय पोत के शतशः विदीर्ण होने का स्वप्न देखता है, तथा उनके साढ़े छः हजार अमात्य भी अनिष्टकारी स्वप्न देखते है, जिससे वे सभी भयत्रस्त हो कहते है—

"मा हैव राज्ञश्चन्द्रप्रभस्य महापृथिवीपालस्य मैत्रात्मकस्य कारुणिकस्य सत्त्ववत्सलस्यानित्यताबलमागच्छेत्, मा हैव अस्माकं देवेन सार्धं नानाभावो भविष्यति विनाभावो विप्रयोगः, मा हैव अत्राणोऽपरित्राणो जम्बुद्वीपो भविष्यतीति।"[1]

राजा धन यह स्वप्न देखते है कि कोई गीध आकर, उनके पेट को विदीर्ण कर, उनकी आँतो को निकालकर और उन आँतो से उस नगर को वेष्टित कर देता है तथा घर मे सात रत्नो को आते हुए देखते है।[2]

[झ] अनार्य कर्म

स्त्री-वध अनार्य कर्मो मे परिगणित था। अशोक को तिष्यरक्षिता द्वारा कुणाल के नेत्र निकलवाये जाने की यथार्थ बात ज्ञात होने पर, जब वह उसको अनेक प्रकार के दण्ड देने की बात कहते हैं, तो उस समय कुणाल राजा अशोक से इसका निषेध करता है—

'अनार्यकर्मा यदि तिष्यरक्षिता
त्वमार्यकर्मा भव मा वध स्त्रियम्।"[3]

समाज मे स्त्री-वध अति निकृष्ट समझा जाता था तथा स्त्री-घातक के साथ लोग अभाषणादि भी नही करते थे। एक स्थल पर मातुल गृहपति सुभद्र से कहता है कि यदि तुम ज्योतिष्क कुमार को राजकुल से ले आते हो, तभी कुशल है अन्यथा हम लोग सर्वत्र ऐसी घोषणा करेगे कि—

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९७-१९८।
२. सुधनकुमारावदान, पृ० २९१।
३. कुणालावदान, पृ० २७०।

"अस्माकं भगिनी सुभद्रेण गृहपतिना प्रघातिता। स्त्रीघातकोऽयम्। न केनचिदाभाषितव्यमिति"।[1]

स्त्री-घातक को जाति से वहिष्कृत कर दिया जाता था तथा राजा भी उसको कुछ दण्डादि देते थे। इसी से मातुल गृहपति सुभद्र को जाति से निकाल देने तथा राजकुल अनर्थ कराने की धमकी देता है।[2]

"रामायण" मे स्त्रियो को अवध्या घोषित किया गया है।[3] तथा यह भी कहा कहा गया है कि महात्मा लोग स्त्रियो के प्रति कोई क्रूर व्यवहार नही करते थे।[4]

अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए प्राणी गर्भस्थ सत्त्व की निर्मम हत्या [भ्रूण-हत्या] जैसा निन्दित कर्म भी करता था और और ऐसा करने में वह अपनी पत्नी तक का वध कर डालता था। भूरिक के यह कहने पर कि यह गर्भस्थ सत्त्व मन्दभाग्य है और उत्पन्न होते ही कुल को विनष्ट कर देगा गृहपति सुभद्र उसे सर्वथा त्याज्य समझता है। अतएव उसे नष्ट करने के लिए वह भैषज्य देना प्रारम्भ करता है। फिर वह अपनी पत्नी के वाम कुक्षि का मर्दन करता है, जिससे वह गर्भ दक्षिण कुक्षि मे चला जाता है और दक्षिण कुक्षि का मर्दन करने पर वह पुन. वाम कुक्षि मे चला जाता है। अन्त में, वह अपनी पत्नी को अरण्य मे ले जा कर इतना मारता है कि उसकी मृत्यु हो जाती है।[5]

पाणिनि ने भी "अष्टाध्यायी" मे भ्रौणहत्य आदि महापातकों का उल्लेख किया है।[6]

O

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६८।

२. वही, पृ० १६८।

३. रामायण, २,७६,३७।

४. रामायण—"न हि स्त्रीषु महात्मान : क्वचित् कुर्वन्तिदारुणम्" [४,३३,३६]

५. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६२—१६३.।

६. अष्टाध्यायी—६,४,१७४।

परिच्छेद ११

उदात्त-भावनाएँ

[क] त्याग

मानव के लिए जीवन की प्रेरणा देने वाले सत्य का प्रयोजन न राज्य है, न स्वर्ग है, न भोग है, न इन्द्रपद है, न ब्रह्म और न चक्रवर्ती राजाओ का विजय; अपितु उसका एक मात्र लक्ष्य तो यही है कि मानव को सम्यक् सम्बोधि प्राप्त हो, जिससे वह इन्द्रियासक्तो को आत्मनिग्रहार्थ प्रेरित करे, अशान्तों को शान्ति प्रदान करे, नानाविवदुःखसवलित संसार-सागरानुविद्ध मनुष्यों का उद्धार करे, बन्धन-युक्त मनुष्यो को निर्मुक्त करे, अनाश्वस्तो को आश्वस्त करे और उद्विग्नो को सुखी करे। राजा चन्द्रप्रभ ने इन्ही विचारो को व्यक्त किया है।[1]

दूसरो की प्राण-रक्षा के निमित्त स्वात्मत्याग के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। एक नवप्रसूता क्षुत्क्षामपरीता स्त्री एव उस के नवजात बालक की रक्षा के लिए कोई अन्य उपाय न देख रूपावती ने अपने दोनों स्तन शस्त्र द्वारा काट कर उस स्त्री को दे दिये।[2]

इसी अवदान में जब ब्रह्मप्रभ माणवक वन मे जीव-कल्याणार्थ तप करता रहता है, एक गुर्विणी व्याघ्री उसकी कुटी के पास शरण लेती है और प्रसवोपरान्त वह अपने दोनो बच्चो को खाना चाहती है, तो ब्रह्मप्रभ स्वशरीरार्पण द्वारा उनकी रक्षा करता है।[3]

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०२।

२. रूपावत्यवदान, पृ० ३०८।

३. रूपावत्यवदान, पृ० ३११।

ये त्याग के उदाहरण प्रयोजन निष्ठ न हो कर एक मात्र भूतदयाद्रवीभूत ही दिखलाई पड़ते हैं। इस रहस्य का उद्घाटन उन शब्दों में किया गया है—

"येनाहं सत्येन सत्यवचनेन परित्यजामि, न राज्यार्थं, न भोगार्थं न शक्रार्थं न राजचक्रवर्तिविषयार्थम्, अन्यत्र कथमहमनुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबुध्य अदान्तान् दमयेयम्, अतीर्णान् तारयेयम्, अमुक्तान् मोचयेयम्, अनाश्वस्ताना-श्वासयेयम्, अपरिनिर्वृतान् परिनिर्वापयेयम्" ।[1]

ये परित्याग वास्तविक होते थे। त्याग-कर्ता के मन में, त्याग करते समय या त्याग करने के बाद किसी भी प्रकार का अन्यथाभाव या क्षोभ नहीं उत्पन्न होता था। रूपावती के त्याग के गौरव से आकृष्ट हो शक्र उसके पास त्याग-प्रयोजन की परीक्षा लेने आये। रूपावती कहती है कि मैंने केवल भूतदु:ख निवारणार्थ ही अपने उभय स्तनों का परित्याग किया और यदि यह बात सत्य है तो मेरी स्त्रीन्द्रिय का अन्तर्धान होकर पुरुषेन्द्रिय प्रकट हो जाय। ऐसा कहते ही वह एक पुरुष हो गई और उसका नाम रूपावती से रूपावत कुमार हो गया।[2]

[ख] चारित्रिक बल

विमाता की आसक्ति पर कुणाल की प्रतिक्रिया उसके चरित्र की निर्मलता, मातृप्रेम सम्बन्धी उच्च-आदर्श एवं शम-दम-संयम के नैतिक पुष्टि की एक प्रशस्त परिचायिका है। इसकी उज्ज्वल ज्योति में ही तत्कालीन सामाजिक नैतिक जागरण का बोध होता है। प्रणय-तिरस्कृत तिष्यरक्षिता की—

"अभिकामामभिगतां यत्त्वं नेच्छसि मामिह।
नचिरादेव दुर्बुद्धे सर्वथा न भविष्यसि ॥"[3]

इस धमकी को सुनकर भी कुणाल दृढ़ रहता है और कहता है, मेरी मृत्यु भले ही हो जाय किन्तु मैं धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला न होऊँ। सज्जनों द्वारा धिक्कृत जीवन से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं।

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० २१२।
२. वही, पृ० ३०९।
३. कुणालावदान, पृ० २६२।

मानव मे दृश्यमान चर्म-चक्षुओ से सर्वथा पृथक् एक शमस्वरूपात्मक प्रज्ञा-चक्षु भी स्थित होता है। शम स्वरूपात्मक होने के कारण ही दो विभिन्न कार्य साथ ही साथ इसके द्वारा सम्पन्न होते है—एक तो अज्ञानान्धकार-शमन और दूसरा तद्ध्वंसोत्थित-कल्याण। इस प्रज्ञा-चक्षु [ज्ञान-दृष्टि] का उन्मीलन होते ही मानव की निविड अज्ञानान्धकार-पुंज-रूपिणी भ्रामक असद्-दृष्टि का सर्वथा प्रणाश हो जाने से उसके चतुर्दिक एक शम-रूपिणी यथार्थभूता निर्मला ज्योति प्रवाहित होने लगती है।

दोनो चर्म चक्षुओं के उद्धृत हो जाने पर कुणाल का प्रज्ञा-चक्षु खुल जाता है और वह सोचता है कि यद्यपि मेरे नेत्र अपहृत कर लिए गए किन्तु मेरा प्रज्ञा-चक्षु विशुद्ध हो गया है।[१]

[ग] परदारान् न वीक्षेत

पराई स्त्री पर दृष्टिपात न करना, भारतीय-संस्कृति की मर्यादा रही है। राजा विम्बिसार ज्योतिष्क कुमार के घर भोजन करने के लिए जाते समय वाह्य परिजन को देखकर नेत्रो को वन्द कर लेता है। कारण पूछने पर वह कहता है—

"वधूजनोऽयमिति कृत्वा"।[२]

"रामायण" मे भी लक्ष्मण, तारा को देख अपना सिर नीचा कर लेते है।[३] पराई स्त्री की ओर दृष्टिपात न करने का प्रतिपादन विष्णु-सूत्र[४] और अभिज्ञानशाकुन्तल[५] मे भी किया गया है।

[घ] मातृदेवो भव

"मैत्रकन्यकावदान" मे मानव को तैत्तिरीयोपनिषद् प्रतिपादित मातृ-भक्त

---

१. कुणालावदान, पृ० २६६।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२।
३. रामायण, ४, ३३, ३६
४. "परदारान् न वीक्षेत"
५. "अनिर्वर्ण्यं खलु परकलत्रम्"

होने का पूत सन्देश[१] दिया गया है। माता की अवज्ञा करने वाले प्राणियों को अनेकविध कष्टों का भोग करना पड़ता है।

माता के निवारण करने पर भी मैत्रकन्यक उसकी बातों की अवहेलना कर समुद्रावतरण करने के लिए तत्पर होता है और माता के बार-बार रोकने पर वह क्रोधित हो, रुदन करती हुई पृथ्वी पर पड़ी माता के सिर पर पादप्रहार कर वणिग्-जनो के साथ जाता है। माता की इस अवज्ञा के कारण ही मैत्रकन्यक यानपात्र के टूट जाने से अनेक विपत्तियों का सामना करता है।[२]

एक पुरुष के सिर पर, आग से जलते हुये लोहे के चक्र को घूमता देख कर मैत्रकन्यक उससे कारण पूछता है। वह इसे माता के शिर पर पाद-प्रहार का परिणाम बतलाता है।[३]

मैत्रकन्यक भी यानपात्र के विदीर्ण हो जाने पर अपनी इन विपत्तियो को मातृतिरस्कार का ही परिणाम समझता है। वह सोचता है कि यह तो उस दारुण पाप का केवल पुष्प-मात्र है। वह अपने व्यवहार पर अति लज्जित होता है और उग्र त्रपा-भार से पृथ्वी मे प्रविष्ट हो जाना चाहता है।[४]

माता चिर वन्दनीया है। उसकी महिमा सर्वोपरि है। वह प्राणियों के लिए सर्व सुखों का प्रसव करने वाली है। वह परमक्षेत्र है—

"या लोके प्रवदन्ति साधुमतयः क्षेत्रं परं प्राणिनाम्"।[५]

ऐसी पुण्य-प्रसवा माता का तिरस्कार करने से मानव अनेक कष्टों से अभिभूत हो जाता है। अतः यह उपदेश दिया गया है कि मातृ-शुश्रूषा प्रमुदित मन से निरन्तर करनी चाहिए—

---

१. "तैत्तिरीयोपनिषद्" एकादश अनुवाक्—"मातृदेवो भव"
२. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९९-५०० ।
३. वही, पृ० ५०९ ।
४ वही, पृ० ५०१ ।
५. वही, पृ० ५०९ ।

"मातर्यपकारिण: प्राणिन इहैव व्यसनप्रपातपातालावलम्बिनो भवन्तीति सततसमुपजायमानप्रेमप्रसादबहुमानमानसैः सत्पुरुषैर्मातरः शुश्रूषणीयाः" ।[1]

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि माता-पिता बालक के पालन-पोषण एवं संवर्धन करने मे अनेक कष्टो का सहन करते हैं । वस्तुतः माता-पिता का इतना अधिक उपकार पुत्र पर रहता है कि जन्म पर्यन्त सेवा करने पर भी वह उन से उऋण नही होता ।[2]

o

---

१. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३,५१२ ।

२. पूर्णावदान, पृ० ३१ ।

परिच्छेद १२

अन्य तत्त्व

[क] प्रेम[1]

प्रणय-सरिता का प्रवाह मार्गाचलव्यतिकराकुलित-सिन्धु से सर्वथा विलक्षण है। उसमें बड़े से बड़ा भी अन्तराय बाधक नहीं हो सकता। यही कारण है कि सुधन कुमार जब कार्वटिक पर विजय प्राप्त कर हस्तिनापुर लौटता है, तब वहाँ अपनी प्रणय-पात्री मनोहरा किन्नरी को न देख अति व्याकुल हो जाता है और माता-पिता तथा अन्य लोगों के भी यह कहने पर कि "सन्त्यस्मिन्नन्तःपुरे तद्विशिष्टतराः स्त्रियः। किमर्थं शोकः क्रियत इति?"[1]— वह किसी प्रकार शान्त नहीं होता। इतना ही नहीं ऋषि द्वारा मनोहरा-निर्दिष्ट विषम और दुर्गम मार्ग-श्रवण कर वह उसके समीप पहुँचने के लिये तत्पर भी हो जाता है तथा ऋषि के मना करने और यह कहने पर कि तुम एकाकी और असहाय हो, वह कहता है—

"चन्द्रस्य खे विचरतः क्व सहायभावो दंष्ट्राबलेन बलिनश्च मृगाधिपस्य।
अग्नेश्च दावदहने क्व सहायभावः अस्मद्विधस्य च सहायबलेन किं स्यात्॥
किं भो महार्णवजलं न विगाहितव्यं किं सर्पदष्ट इति नैव चिकित्सनीयः।
वीर्यं भजेत्सुमहदूर्जितसत्त्वदृष्टं यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्रदोषः॥"[1]

—और यथोपदिष्ट मार्ग का अनुसरण कर वह अपने इष्ट स्थल तक पहुँच जाता है।

मानव में, उत्साह एवं दृढ़ निश्चय एक ऐसी स्फूर्ति का सञ्चार कर देता है, जिससे वह चट्टानों को विदीर्ण कर सकता है, नानाविध विकराल जन्तु संवलित दुर्लङ्घ्य सागर का उल्लंघन कर सकता है, दुर्दमनीयों को सर्वथा

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २९७-२९८।

दम्य बना सकता है, किं बहुना सवशिक्य कार्यों का सम्पादन कर सकता है। यहाँ महाकवि कालिदास के "कुमारसम्भव" की उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है।[1] अथर्ववेद मे भी पुरुषार्थ को सफलता की कुंजी बतलाया गया है।[2]

[ख] काम

"काम का प्रतिसेवन करने वाले व्यक्ति के लिए कोई भी पाप कर्म अकरणीय नही होता—

"कामान् खलु प्रतिसेवतो न हि किंचित् पापकं कर्माकरणीयमति वदामि"।[3]

काम-संसक्त चित होने के कारण ही दारक श्रेष्ठि-पुत्र तीन महापातको का भागी होता है—पितृ-वध, मातृ-वध एवं अर्हत्-वध।[4]

इसी प्रकार शिखण्डी भी विषय-भोगो का सेवन करता हुआ दुष्ट अमात्यों के कहने से पितृ-वध की आज्ञा दे देता है।[5]

इतना ही नही काम—विषय-भोग—नमक-मिश्रित खारे जल के तुल्य है। जितना ही इनका सेवन किया जाता है, उतनी ही इन वैषयिक भोगो की तृष्णा मे वृद्धि होती है।

"कामाश्च लवणोदक सदृशाः। यथा यथा सेव्यन्ति, तथा तथा तृष्णा वृद्धिमुपयाति"।[6]

वस्तुतः काम-तृष्णा-क्षय का साधन उसका भोग नही है, अपितु

---

१. "क ईप्सितार्थ स्थिरनिश्चय मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत।"

२ "कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः"—७, ५२, ८।

३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५६।

४. वही, पृ० १५६–१६१।

५. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।

६. धर्मरुच्यवदान, पृ० १६०।

उसका सर्वथा प्रणाश ही है। यह एक चिरन्तन सत्य है। इसका अपवाद नही। इसी तथ्य का उन्मीलन "महाभारत" मे भी किया गया है।[1]

[ग] मनोवैज्ञानिक तत्त्व

मानव की मानसिक प्रक्रिया का ज्ञान रखने में लोग विशेष पटु थे। किसी परिस्थिति विशेष में विशिष्ट प्रकृति के व्यक्ति की प्रवृत्ति किन आचरणो में हो सकती है, इस से वे सर्वथा अनभिज्ञ नही थे। जब अजातशत्रु अपने धार्मिक पिता बिम्बिसार का वध कर डालता है और स्वय पट्टबद्ध हो कर राज्य पर प्रतिष्ठित होता है, तथा ज्योतिष्क कुमार घर बाटने की चर्चा करता है, तो वह सोचता है—

"येन पिता धार्मिको धर्मराजः प्रघातितः, स मां मर्षयतीति कुत एतत्" ?[2]

इसी प्रकार मणियों का अपहरण करने के लिए अजातशत्रु के द्वारा धूर्तपुरुषो के भेजे जाने पर ज्योतिष्ककुमार पुनः विचार करता है—

"येन नाम पिता जीविताद् व्यपरोपितः, स मां न प्रघातयिष्यतीति कुत एतत्" ?[3]

और यह सोच कर वह अपना सारा धन दीनो, कृपणो और अनाथो को दान दे कर प्रव्रज्या-ग्रहण कर लेता है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो बात मना की जाती है, उसे मनुष्य अवश्य करता है। प्रतिषिद्ध विषय के प्रति गमन उस की एक सहज प्रवृत्ति है। यही कारण है कि अप्सराओ के द्वारा निवारित किये जाने पर भी मैत्रकन्यक दक्षिण दिशा की ओर जाता है।[4]

---

१. "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥"

२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७३।

३. वही, पृ० १७४।

४. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०६।

[घ] वेश्या-वृत्ति

समाज मे वेश्या-वृत्ति का भी निदर्शन प्राप्त होता है। वेश्या होने के भाव को प्रकट करने के लिए "वेश्यं वाहयति" प्रयुक्त होता था।[१] मथुरा में वासवदत्ता नाम की एक महार्घ गणिका का उल्लेख हुआ है, जो उन दिनों वहाँ की सर्व प्रधान वेश्या के रूप मे विख्यात थी। वह अपने प्रेम का दान पाँच सौ मुद्राएँ (पुराण) ले कर करती थी।[२]

किन्तु इस के विपरीत लोग इसे पाप-कर्म और असद्धर्म भी समझते थे। प्रेतनगर से लौटने पर कोटिकर्ण वासवग्राम मे रहने वाली एक वेश्या को उस पाप-कर्म से निवृत्त होने का, उस की माता द्वारा प्रेषित, सन्देश देता है।[३]

[ङ] दरिद्रता की निन्दा

समाज मे दरिद्रता की निन्दा की जाती थी तथा उसे मरण-सम माना गया है। जब राजा कनकवर्ण के पास केवल एक मानिका-भक्त ही अवशेष रह जाता है, उस समय भगवान् प्रत्येकबुद्ध के भोजनार्थ-आगमन प्रकट करने पर राजा अपने को तदर्थ असमर्थ पा कर अति क्षोभ प्रकट करता है और उसी समय राजा के सम्मुख कनकावती राजधानी निवासिनी देवता इस गाथा का उच्चारण करती है—

> "किं दु.खं दारिद्र्यं किं दुःखतरं तदेव दारिद्र्यम्।
> मरणसमं दारिद्र्यम्॥"[४]

O

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ६।

२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१८-२१६।

३. कोटिकर्णावदान, पृ० १०।

४. कनकवर्णावदान, पृ० १८३।

तीसरा अध्याय

आर्थिक जीवन

परिच्छेद १

कृषि-उद्योग

प्राचीन भारत मे "वार्ता" शब्द वैश्यो के तीन प्रमुख धन्धो—कृषि, गोचारण और व्यापार—के लिए प्रयुक्त हुआ है। कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा ये तीन प्राचीन काल से ही जीविका के प्रमुख साधन के रूप में उपलब्ध होते हैं। श्रावस्ती और राजगृह के मध्य स्थित अटवी निवासी लुटेरे भगवान् बुद्ध से कहते है—

"नास्माकं कृषिर्न वाणिज्या न गौरक्ष्यम् । अनेनोपक्रमेण जीविकां कल्पयामः ।"[१]

कृषि उद्योग आजीविका का सर्वसामान्य साधन था। अनेक प्राणी कृषि कर्म मे ही निरत रहकर, उसी से अपनी जीविका चलाते थे। गृहपति बलसेन नित्य प्रति कृषि-कर्म मे सलग्न दिखाई पडता है।[२] जम्बुद्वीप निवासी मनुष्यों के द्वारा कृषि-कर्म के किये जाने का उल्लेख है।[३] इस प्रकार कृषि-कर्म में उद्यत मनुष्यों के अनेक अन्य उदाहरण भी प्राप्त होते है।[४] खेती के लिए "कर्षणकर्म" प्रचलित था।[५] खेती करने वाले किसानो की संज्ञा "कर्षक" थी।[६] इन्हे "कार्षक" भी कहा गया है।[७] खेत को "क्षेत्र"[८] या "केदार"[९]

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ५६।
२. कोटिकर्णावदान, पृ० २।
३. मैत्रेयावदान, पृ० ३६।
४. मान्धातावदान, पृ० १३१।, तोयिकामहावदान, पृ० ३०१, ३०२, ३०३।
५. वही, पृ० १३१।
६. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२६।
७. तोयिकामहावदान, पृ० ३०२, ३०३।
८. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५।
९. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४३।

कहते थे। "हल"[1] और "लाङ्गल"[2] का भी प्रयोग हुआ है। हल चलाते समय बैल को हाँकने के लिए जिस छड़ी का व्यवहार होता था, उसे "प्रतोदयष्टि" कहते थे।[3] खेत के एक किश्त को "हलसीर" या "सीर" कहते थे।[4]

राजा के धार्मिक होने एवं धर्म पूर्वक राज्य का संचालन करने से राज्य धन-धान्य गौ-आदि से पूर्ण होता था। हस्तिनापुर में उत्तरपांचाल महाधन नामक राजा के धार्मिक होने से उस का नगर सुसमृद्ध, सर्वक्षेमयुक्त, तस्कर-दुर्भिक्षादि से रहित और शालि, इक्षु, गौ, महिषी आदि से संपन्न था। उस के राज्य मे समय-समय पर यथेष्ट वर्षा होती थी, जिस से प्रभूत शस्य-संपत्ति का प्रादुर्भाव हो गया था।[5]

सारी शस्य-संपत्ति का विनाश करने वाली अनावृष्टि का भी उल्लेख प्राप्त होता है। राजा कनकवर्ण के राज्य मे एक बार बारह वर्षों तक वर्षा न हुई।[6] इसी प्रकार वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य-काल में बारह वर्षो की अनावृष्टि के कारण तीन प्रकार के—चंचु, श्वेतास्थि और शलाकावृत्ति नामक भयंकर दुर्भिक्ष पड़े थे।[7]

उस काल में कृषि के द्वारा कई वस्तुएँ उत्पन्न की जाती थी जैसे—यव, ब्रीहि, तिल, तण्डुल, शालि, श्यामाक, गोधूम, मुद्ग, माषक, मसूर, इक्षु इत्यादि।[8] धान्य दो प्रकार के थे—ग्रैष्म और शारद। सभी शारद धान्य भाद्रपद मे, ओर ग्रैष्म धान्य कार्तिक या मार्गशीर्ष मे बोये

---

१. तोयिकामहावदान, पृ० ३०१।
२. इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४७।, तोयिकामहावदान, पृ० ३०२,३०३।
३. वही, पृ० ४८।, वही, पृ० ३०२।
४. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७७।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २८३।
६. कनकवर्णावदान, प० १८१।
७. मेण्ढकावदान, पृ० ८२।
८. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१५।

जाते थे ।[1] व्रीहि धान्य वोने का उपयुक्त समय आषाढ का शुक्ल-पक्ष बताया गया है ।[2]

फल-फूलों के बाग-बगीचों का लगाना एक सहायक उद्योग का कार्य करता है। उद्यानो को ऐसे वृक्षो से युक्त बनाया जाता था, जिनमें सभी ऋतुओं के फल-फूल लगे रहते थे। इस दृष्टि से ऋतुओं के अनुसार तीन प्रकार के उद्यान बनाये जाते थे—हैमन्तिक, ग्रैष्मिक और वार्षिक ।[3]

तत्कालीन वृक्षों की तालिका का अध्ययन उस समय के वनस्पति-ज्ञान पर अच्छा प्रकाश डालता है। उस समय के कुछ वृक्षों की ये श्रेणियाँ दी गई हैं—

[अ] फल्गु-वृक्ष[4]

(१) आम्रातक—आम
(२) जम्बु—जामुन
(३) खर्जूर—खजूर
(४) पनस—कटहल
(५) दाला—वृक्ष-विशेष
(६) वनतिन्दुक—तमालवृक्ष
(७) मृद्वीक—अंगूर
(८) बीजपूरक—एक प्रकार का बड़ा नीबू
(९) कपित्थ—कैथा
(१०) अक्षोड—अखरोट
(११) नारिकेल—नारियल
(१२) तिनिश—एक वृक्ष-विशेष

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१४, ४१५ ।
२. वही, पृ० ४१५ ।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० २ १, सुधनकुमारावदान, पृ० २८७ ।
४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२५ ।

(१३) करञ्ज—कंजा वृक्ष, जिसका उपयोग औषध के रूप मे किया जाता है।

[आ] स्थलज-वृक्ष[1]

(१) सार - साल-वृक्ष
(२) तमाल—वृक्ष विशेष, जिसकी पत्तियाँ काली-काली होती है।
(३) नक्तमाल—वृक्ष-विशेष
(४) कर्णिकार—एक पुष्पवृक्ष
(५) सप्तपर्ण—सप्त-पत्र
(६) शिरीष—सिरस वृक्ष
(७) कोविदार—कचनार
(८) स्यन्दन—वृक्ष-विशेष
(९) चन्दन—चन्दन का वृक्ष
(१०) शिंशप—अशोक
(११) एरण्ड—अरण्ड वृक्ष
(१२ खदिर—खैर का वृक्ष

[इ] क्षीर-वृक्ष[2]

(१) उदुम्बर—गूलर
(२) प्लक्ष—पाकर (पिलखन)
(३) अश्वत्थ—पीपल
(४) न्यग्रोध—वरगद
(५) वल्गुक—वृक्ष-विशेष

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२५।
२. वही, पृ० ३२५।

[ई] फलभैषज्य-वृक्ष[1]

(१) आमलकी—आँवला

(२) हरीतकी – हर्रा (हैड़)

(३) विभीतकी—बहेड़ा

(४) फरसक—फालसा

[उ] स्थलज पुष्प-वृक्ष[2]

(१) अतिमुक्तक

(२) चम्पक

(३) पाटल

(४) सुमना

(५) वार्षिका

(६) धनुष्कारिका

[ऊ] जलज पुष्प-वृक्ष[3]

(१) पद्म—कमल

(२) उत्पल—नील-कमल

(३) सौगन्धिक—एक प्रकार का सफेद कमल

(४) मृदुगन्धिक—एक प्रकार का कमल

वनो की उपज से भी आर्थिक लाभ उठाया जाता था। गोशीर्षचन्दन वन से लोग गोशीर्ष चन्दन ले आते थे।[4]

o

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२५।

२. वही, पृ० ३२६।

३. वही, पृ० ३२६।

४. पूर्णावदान, पृ० २५।

परिच्छेद २

पशु-पालन

कृषि और पशु-पालन दोनों परस्पर पूरक धंधे है। आभीर पशु-पालन करते थे और पशु प्रधान वस्ती 'घोप' कहलाती थी।[1]

पशु-पालन मे गो-पालन का महत्त्व अधिक था। इसी कारण पशुओं का पालन करने वाले के लिए "पशुपालक" के साथ ही साथ "गोपालक" शव्द भी प्रचलित था।[2] उस समय गायो की वहुलता थी। राजा चन्द्रप्रभ ने अन्न-पानादि अनेक वस्तुओ के साथ सुवर्ण शृङ्गों वाली गायों का भी दान दिया था।[3]

वैलों के लिए "वलीवर्द" संज्ञा थी। इन का उपयोग हल चलाने मे होता था।[4] वैल, गाड़ी भी खीचते थे। "चतुर्गवयुक्तशकट" का उल्लेख प्राप्त होता है।[5]

घोडे भी रथ खीचते थे। मातगराज त्रिशंकु और पुष्करसारी ब्राह्मण के सर्वश्वेत "वडवारथ" पर चढ़ कर जाने का उल्लेख है।[6] इन घोड़ो का व्यापार भी खूब होता था। उत्तरापथ से पाँच सौ घोड़ों को ले कर एक सार्थवाह के मध्य देश आने का उदाहरण प्राप्त होता है।[7]

---

१. वीतशोकावदान, पृ० २७७।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४८५
३. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
४. तोयिकामहावदान, पृ० ३०२।
५. चूडापक्षावदान, पृ० ४४३।
६. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१६।
७. चूडापक्षावदान, पृ० ४४२।

गधों से भी रथ हँकवाया जाता था। श्रोण कोटिकर्ण गर्दभ-यान पर चढ़ कर जाता है।[1] गधे सामान भी ढोते थे।[2]

व्यापार की वस्तुओं को ढोने के लिए ऊँटों का भी उपयोग किया जाता था।[3]

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ४।
२. वही, पृ० ३।
३. वही, पृ० ३।

परिच्छेद ३

वाणिज्य-व्यापार

"दिव्यावदान" से ज्ञात होता है कि इस युग मे भारत का व्यापार खूब बढा-चढ़ा था। अन्तर्देशीय[1] तथा विदेशीय[2] दोनों प्रकार के व्यापार सुसमृद्ध थे। श्रावस्ती[3], वाराणसी[4], आदि नगरो मे धनाढ्य व्यापारी रहते थे। वाराणसी[5] और मथुरा[6] घोडो के व्यापार के मुख्य केन्द्र थे। इन व्यापारो के लिए दो प्रकार के मार्गों का उपयोग किया जाता था—स्थल-मार्ग[7] और जल-मार्ग[8]।

[क] व्यापार के साधन

स्थल-मार्ग द्वारा व्यापार करते समय व्यापार की वस्तुओ को विभिन्न प्रकार की गाड़ियो तथा ऊँट, बैल, गधे आदि की पीठ पर लादकर ले जाते थे। माल ढोने के काम मे आने वाली गाड़ियाँ, "शकट" कहलाती थी।[9]

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ३ ।, पूर्णावदान, पृ० १६, २० ।, सुप्रियावदान, पृ० ६३ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३७ ।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५२ ।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९९ ।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१९ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३९, ४४२ ।
३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२ ।, सघरक्षितावदान, पृ० २०४ ।, पांशुप्रदानावदान, पृ० २३७ ।
४. सुप्रियावदान, पृ० ६२ ।
५. चूडापक्षावदान, पृ० ४४३ ।
६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१९ ।
७. वही, पृ० २१९ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४४२ ।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३९ ।
९. कोटिकर्णावदान, पृ० ३ ।

मनुष्यों को ले जाने वाली सवारियों को "यान" कहते थे। ये कई प्रकार की होती थी, जैसे—हस्तियान, अश्वयान, गर्दभयान।[१]

वाणिज्य का विस्तार विदेशों तक था, जहाँ व्यापारी जहाजों द्वारा पहुँचते थे। ये समुद्रयात्रा मे जाने वाले माल को वैल गाड़ियों, मोटियों, वैलों, खच्चरो आदि पर लादकर वन्दरगाह तक आते थे तथा समुद्रयात्रा से लौटने के पश्चात् भी ये अपने भाण्डो को स्थल-वाहनो पर लादकर ले जाते थे। इन्हे "स्थलज-वहित्र" की संज्ञा दी गई है।[२]

विदेशो की यात्रा बड़े-बड़े जहाजो के द्वारा की जाती थी।[३] देशीय व्यापार करते समय भी मार्ग मे पडने वाली नदियो को नाव द्वारा पार किया जाता था। "चूडापक्षावदान" मे एक कर्पटक (ग्राम) का एक सौकरिक शूकरो का मांस वेचने के लिए उन्हे नाव द्वारा नदी के पार ले जाता है।[४] इस प्रकार लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर नाव द्वारा नदी पार कर पहुँचते थे। कभी-कभी नदी पार उतरने के लिए नावों का पुल (नौसंक्रम) भी होता था। "कुणालावदान" मे राजा अशोक के द्वारा मथुरा से लेकर पाटलिपुत्र तक नौसंक्रम स्थापित किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[५] "मैत्रेयावदान" में भी श्रावस्ती जाने के मार्ग पर वैदेहीपुत्र अजातशत्रु द्वारा एक नाव का पुल (नौसक्रम) वनवाये जाने की चर्चा है।[६]

मार्ग मे पड़ने वाली नदियो को पार करने के लिये इन पर नाव के पुल वनाये जाने का उल्लेख हमे रामायण में भी प्राप्त होता है।[७]

[ख] सार्थ एवं सार्थवाह

व्यापार के लिए वणिको का समूह मिलकर यात्रा करता था। इन मे

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ३।
२. सुप्रियावदान, पृ० ६३।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० ३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।, इत्यादि।
४. चूडापक्षावदान, पृ० ४३६।
५. कुणालावदान, पृ० २४५।
६ मैत्रेयावदान, पृ० ३४।
७. २।८९।७-११

पाँच-पाँच सौ तक वणिक् साथ चलते थे ।[१] इस प्रकार अपना-अपना सामान लादकर व्यापार्थ साथ चलने वाले पथिकों के समूह को "सार्थ" कहते थे । सार्थ का नेता "सार्थवाह" कहलाता था । इसी की अध्यक्षता में व्यापारी अपनी यात्रा करते थे । अमरकोष के टीकाकार क्षीर स्वामी ने सार्थ एवं सार्थवाह शब्द की व्याख्या क्रमशः "यात्रा करने वाले पान्थों का समूह"[२] और "पूँजी द्वारा व्यापार करने वाले पान्थो का नेता"[३] किया है ।

सार्थ का नेता सार्थवाह ऐसे किसी भी कार्य को करने के लिए स्वतन्त्र नही था, जिसका विरोध सार्थ कर रहा हो । 'स्वागतावदान" में अपने साथ आते हुए स्वागत के विषय में सार्थवाह एव सार्थ के वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है कि सार्थवाह सार्थ का स्वामी होता था और वह उस *कार्य का सम्पादन नही करता था, जिसका अनुमोदन सार्थ ने न किया हो ।*[४]

सार्थ की रक्षा का उत्तरदायित्व सार्थवाह पर होता था । पाँच सौ सार्थ के साथ रत्नद्वीप से लौटे हुए सार्थवाह सुप्रिय से मार्ग मे एक सहस्र चोर मिले, जिन्होने कहा "तुम अकेले कुशलपूर्वक जाओ और अवशिष्ट सार्थ का हम लोग धन अपहरण करेंगे ।" परन्तु सार्थवाह इस पर सहमत नही होता और कहता है कि "ये सार्थ मेरे आश्रित हैं । अतः तुम लोग ऐसा नही कर सकते" ।[५] इस प्रकार वह सार्थवाह सार्थ को छोड़कर नही जाता और सार्थ के मूल्य की गणना करके चोरों को देता है तथा सार्थ की रक्षा करता है ।

[ग] सामुद्रिक यात्रा

भारत के व्यापारी महासमुद्र को पार कर दूर-दूर देशो मे व्यापार के लिए जाया करते थे । ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय जहाज बनाने का व्यवसाय अत्यन्त उन्नत अवस्था मे था । इतने विशालकाय जहाजों का निर्माण होता था कि उसमें पाँच-पाँच सौ तक व्यापारी एक साथ चढ़कर

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० २१ ।,
संघरक्षितावदान पृ० २०५ । इत्यादि ।

२. अमरकोष, २, ६, ४२ ।

३. अमरकोष, ३, ९, ७८ ।

४. स्वागतावदान, पृ० १०७ ।

५. सुप्रियावदान, पृ० ६३ ।

यात्रा करते थे ।[१] फिर भी ये जहाज अधिक मजबूत नही बनते थे, क्योंकि अधिकतर इन जहाजो के समुद्र मे टूट जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं । ये समुद्री तूफ़ानों तथा अन्य आघातो के सहन करने में कभी-कभी असमर्थ होते थे ।[२]

एक स्थल पर, यानपात्र (जहाज) के समुद्र-मध्य में वाताघात से विदीर्ण हो जाने पर मैत्रकन्यक के महद्धैर्यपराक्रम द्वारा फलक को ग्रहण कर निराहार कई दिनो के अनन्तर किसी प्रकार महार्णव के दक्षिण तट पर पहुँचने का वर्णन है ।[३]

[घ] प्रस्थान-पूर्व-कृत्य

जब कोई धनी व्यापारी समुद्रावतरण के लिये अग्रसर होता है, तो प्रस्थान करने से पूर्व वह नगर मे घण्टावघोष करवाता है; जिसके फलस्वरूप अनेक व्यापारी उसके साथ चलने के लिए तत्पर हो जाते हैं ।[४] समुद्र-यात्रा के लिये चलने से पूर्व सार्थवाह का समुचित प्रकार से मंगल स्वस्त्ययन किया जाता था और इसके बाद वह माता के पास उससे विदा लेने के लिए जाता था ।[५] अपने-अपने माल को बैलों, गाड़ियो आदि पर लाद कर सार्थ बन्दरगाह तक आता था । जहाजों के चलाने वाले को "कर्णधार" कहते थे ।[६] इसकी कार्य कुशलता पर ही यात्राओ की सफलता निर्भर होती थी । इन्हें समुद्री-मछलियो, अनुकूल अथवा प्रतिकूल वायु आदि का ज्ञान होता था ।[७] अनुकूल वायु को देखकर ये पाले (वरत्र या वस्त्र) खोल देते थे, जिससे

---

१. पूर्णावदान, पृ० २१ ।, सुप्रियावदान, पृ० ६३ ।, संघरक्षितावदान, पृ० २०५ ।

२. चूडापक्षावदान, पृ० ४३६ । मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६५, ५०० ।

३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०१ ।

४. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० २० ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३७ इत्यादि ।

५ कोटिकर्णावदान, पृ० ३ ।

६. धर्मरुच्यावदान, पृ० १४२ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३७ ।

७ वही, पृ० १४३ ।

जहाज अभिलषित स्थल पर शीघ्र ही पहुँच जाते थे।[1] लंगर डालने के बाद जहाज को एक खूँटे (वेत्रपाश) से बाँध दिया जाता था।[2]

[ङ] शुल्क-तर्पण्य

किसी धनी व्यापारी की यह घोषणा कि उसके साथ चलने वाले व्यापारियों को किसी प्रकार का कर—शुल्क, तर्पण्य नहीं देना होगा;[3] इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उन्हे कुछ करो को चुकाना पड़ता था। अधिकतर व्यापारी शुल्क दे देते थे, पर कुछ ऐसे भी थे जो निःशुल्क माल ले जाना चाहते थे। राजगृह और चम्पा के मध्य एक शुल्क-शाला का उल्लेख है। यहाँ का घण्टा चोरी से माल ले जाने पर बजने लगता था।[4] फिर भी चम्पा का एक ब्राह्मण एक यमली (वस्त्रो का जोडा) अपने छाते की डण्डी मे छिपा कर ले जाना चाहता है। सार्थ के साथ राजगृह जाते हुये जब वह शुल्क-शाला मे पहुँचता है, तो शुल्काध्यक्ष सार्थ से माल का शुल्क ग्रहण कर लेता है। किन्तु सार्थ के आगे बढते ही घण्टा बजने लगता है, जिससे शुल्काध्यक्ष को यह ज्ञात हो जाता है कि शुल्क अभी पूर्ण रूप से नही दिया गया है। शौल्किक फिर से सार्थ का निरीक्षण करते हैं। पर परिणाम कुछ न निकलने से वे सार्थ को दो वर्गों मे विभाजित कर जाने देते हैं। जिस वर्ग के जाने पर पुनः घण्टा बजने लगता है, उसे फिर दो वर्गो मे बाँट कर तथा इसी क्रम के द्वारा वे अन्त मे ब्राह्मण को पकड़ लेते है। फिर भी छिपे माल का पता नही लगता। अन्त मे, शुल्क न ग्रहण किये जाने का वचन देने पर वह ब्राह्मण डण्डी से यमली निकाल कर दिखला देता है।

वस्तुतः आज के युग मे यह उपर्युक्त घटना—घण्टे का अपने आप बजने लगना और चोर को ढूँढ़ निकालना—सत्य नही प्रतीत होती, फिर भी उस युग की जैसी घटना का वर्णन यहाँ प्राप्त होता है, उसी का उल्लेख किया गया है।

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. सुप्रियावदान, पृ० ७०।
३. कोटिकर्णावदान. पृ० २।, पूर्णावदान, पृ० २०। इत्यादि।
४. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।

[च] समुद्र-यात्रा संबन्धी भय

समुद्र-यात्रा में अनेक भय थे। महासमुद्रावतरण करते समय लोगों को अधिकांशतः अपने माता-पिता, पुत्र, कलत्र, अन्य सम्बन्धि-जन एवं देश का परित्याग कर अपने जीवन से सर्वथा हाथ धोना पड़ता था। ऐसी स्थिति में सामुद्रिक-यात्रा का करना महत् पराक्रम का कार्य था। वहाँ तिमि और तिमिंगिल नाम के एक विशेष प्रकार के बड़े मगर होते थे और यत्र-तत्र कूर्मो का भी भय होता था। लहरों के ऊँची उठने के कारण किनारे गिर पडते हैं (स्थल-उत्सीदन-भय), जल मे जहाज कभी-कभी बहुत दूर तक चले जाते हैं (जल-संसीदन-भय) और कभी-कभी जल के भीतर छिपी चट्टानों से टकरा कर विदीर्ण हो जाते हैं (उच्छेदन-भय)। बडे-बड़े तूफानो (कालिकावात) का भी भय रहता है और साथ ही समुद्री डाकू नीले वस्त्र पहन कर जहाजो को लूटते रहते है (चौर-भय)। ऊँची-ऊँची लहरो से भी जहाज डूब जाते थे (आवर्त-भय) तथा कुम्भीर और शिशुमार का भय उन्हें बना रहता था।[1] समुद्र के बडे-बड़े सर्प भी जहाजो पर आक्रमण करते थे।[2] ताम्रद्वीप निवासिनी राक्षसियाँ तो व्यापारियो को चट भी कर जाती थी।[3]

[छ] अन्य असुविधाएँ

रत्नद्वीप पहुँच कर कर्णधार वणिको को सावधान करता हुआ वहाँ की कुछ अन्य असुविधाओ का वर्णन करता है। इस द्वीप में रत्न सदृश काच-मणियाँ प्राप्त होती है। अतः तुम लोग यथेष्ट-रूपेण परीक्षित मणियो का ही ग्रहण करो। इस द्वीप मे क्रौचकुमारिका नाम की राक्षसी स्त्रियाँ निवास करती है। वे पुरुषो को इतना पीटती है कि उनके प्राण-पखेरू वही उड जाते हैं। साथ ही इस रत्न द्वीप मे नशीले फल भी प्राप्त होते है, जिसे खाने से सात दिनो तक मनुष्य सोता ही रहता है। इस द्वीप में ऐसे मानवेतर प्राणी निवास करते है, जो सात दिनो तक मनुष्यो को छोड़

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. संघरक्षितावदान, पृ० २०५।
३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।

देते हैं, परन्तु सात दिनों के बाद वे ऐसी वायु छोड़ते हैं, जो जहाज को अपने मार्ग से हटा देती है।[1]

[ज] परिवार के सदस्यों की भय-जन्य विकलता

समुद्रावतरण के इन भयों को देखते हुये हम सामुद्रिक व्यापारियों के परिवार के सदस्यों की मन:स्थिति की कल्पना कर सकते हैं। सामुद्रिक कष्ट-स्मरण मात्र से ही सहज भीरु-प्रकृति नारी का कोमल और भावुक अन्तस्तल विक्षुब्ध हो उठता है; जिससे वह अपने पति या पुत्र की इस यात्रा का प्रतिषेध करती है। "चूडापक्षावदान" में पुत्र के यह पूछने पर कि "मेरे पिता और पितामह कौन सा कर्म करते थे ?"—महासमुद्रावतरण-भय-त्रस्ता उसकी माँ सोचती है "यदि इस से यह कहूँ कि समुद्र द्वारा व्यापार करते थे, तो संभव है कि यह भी समुद्रावतरण करे और वही मृत्यु का भागी हो जाय"।[2] इसी प्रकार मैत्रकन्यक को समुद्रावतरण के लिये तत्पर सुन कर, अपने पति की समुद्र मे मृत्यु हो जाने से पति-वियोग-संत्रस्ता उसकी माँ अपने उस अकेले पुत्र को इस महात्रास-जनक निश्चय से हटाने के लिये करुण क्रन्दन करती हुई, उसे समझाती है।[3]

समुद्रावतरण के लिये उद्यत श्रोण कोटिकर्ण मंगल स्वस्त्ययन किए जाने के पश्चात् माता के दर्शनार्थ जाता है। उसे जाने के लिए तत्पर देख माँ के नेत्रों से अश्रु-जल प्रवाहित होने लगता है। कोटिकर्ण द्वारा रोदन का कारण पूछे जाने पर वह कहती है, "कदाचित् मैं पुनः पुत्र को जीवित देख सकूँगी"।[4]

सामुद्रिक यात्रा के इतनी भयावह होने के कारण ही पूर्ण, प्रव्रजित होने से पूर्व अपने भाई भविल को समुद्रावतरण के लिये मना करता है।[5]

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. वही, पृ०४३६।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९९।
४. कोटिकर्णावदान, पृ० ३।
५. पूर्णावदान, पृ० २१।

[झ] व्यापारियों की दृढ़ता

उपर्युक्त इतनी असुविधाओं के होने पर भी अपने लक्ष्य के प्रति सुदृढ़ व्यापारी कभी विचलित नही होते थे।[१] वे पाँच-पाँच सौ के समूह में मिल कर एक साथ यात्रा करते थे। निश्चय ही ये व्यापारी अत्यन्त धीर, सहिष्णु एवं कर्मठ होते थे। कुछ ऐसे भी साहसिक यात्रियो का उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्होने अनेक बार समुद्र यात्राएँ की। पूर्ण ने सात बार सकुशल समुद्र-यात्रा की।[२] सार्थवाह सुप्रिय भी सात बार समुद्र-यात्रा करता है।[३] मूषिका हैरण्यिक के भी सात बार समुद्र-यात्रा करने की चर्चा है।[४] दृढ़ प्रतिज्ञ सार्थवाह सुप्रिय का देवता-निर्दिष्ट बदर द्वीप के कष्ट-साध्य दुर्गम मार्ग का श्रवण कर के भी महद् धैर्य, पराक्रम एवं अदम्य उत्साह के साथ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुए बदर द्वीप की यात्रा करना अवितथरूपेण भारतीय व्यापारियो की वज्रमयी दृढ़ता का परिचायक है।[५]

[ञ] सपत्नीक सामुद्रिक यात्रा

समुद्र-यात्रा की नानाविध असुविधाओ को ध्यान मे रख कर ही अधिकतर व्यापारी अपनी स्त्रियो को साथ नही ले जाते थे। परन्तु कभी-कभी वे अपनी स्त्रियों के साथ भी यात्रा करते थे। 'पांशुप्रदानावदान' मे एक स्थल पर कहा गया है कि श्रावस्ती का एक सार्थवाह अपनी पत्नी के साथ महासमुद्रावतरण करता है। उसकी पत्नी समुद्र मे ही एक पुत्र को जन्म देती है और समुद्र मे उत्पन्न होने के कारण उसका नाम समुद्र रख दिया जाता है। यह सार्थवाह बारह वर्ष के बाद महासमुद्र से लौटता है।[६]

[ट] व्यापार की वस्तुएँ

इन जल और स्थल मार्गो से किन-किन वस्तुओ का व्यापार किया जाता

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२। चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
२. पूर्णावदान, पृ० २१।
३. सुप्रियावदान, पृ० ६४।
४. चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।
५. सुप्रियावदान, पृ० ६८।
६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३७।

था ? प्रायः यह प्रश्न संदिग्ध ही रह जाता है। क्योंकि अधिकांशतः हमें केवल इतना ही लिखा मिलता है कि व्यापारियों ने नाना-विध वाहनों को बहुमूल्य भाण्डों (व्यापारी पदार्थों) से भरा और व्यापार के लिए चल पड़े।[१] इनमें कौन-कौन से बहुमूल्य पदार्थ होते थे ? यह अधिकतर विवादग्रस्त ही रह जाता है। परन्तु कतिपय स्थलों से व्यापार की वस्तुओं का अंशतः ज्ञान प्राप्त होता है।

महासमुद्र में अनेक प्रकार के रत्न होते थे। इन रत्नों की सूची इस प्रकार दी गई है [२]—

(१) मणि
(२) मुक्ता
(३) वैडूर्य
(४) शंख
(५) प्रवाल
(६) रजत
(७) जातरूप
(८) अश्मगर्भ
(९) मुसारगल्व
(१०) लोहितिक
(११) दक्षिणावर्त

समुद्रावतरण कर व्यापारी गोशीर्षचन्दन के वन में भी जाते थे और वहाँ से प्रचुर मात्रा में गोशीर्षचन्दन अपने साथ ले आते थे।[३]

[ठ] क्रय-नियम

वणिकों की श्रेणी सामूहिक रूप से सौदा खरीदती थी। श्रेणियाँ अपने नियम बना सकती थीं, परन्तु नियम की स्वीकृति के लिए यह आवश्यक था कि वह सर्व सम्मत हो। "पूर्णावदान" में वणिक्-समूह एकत्र हो कर यह नियम बनाते हैं कि हम लोगों में से कोई एक सदस्य माल खरीदने का

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६३। संघरक्षितावदान, पृ० २०५।, इत्यादि
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२। चूडापक्षावदान पृ० ४३८।
३. पूर्णावदान, पृ० २५-२६।

अधिकारी नही हो सकता, अपितु गण (श्रेणी) ही मिल कर उस माल को खरीद सकता है।[1]

महासमुद्र से लौटे हुए पाँच सौ व्यापारियों के सूर्पारक नगर मे आने का समाचार सुन कर पूर्ण उनके पास जाता है। उनसे उनके माल (द्रव्य) और मूल्य के विषय मे पूछता है। वह उन्हे द्रव्य का मूल्य १८ लाख सुवर्ण के वयाने (अवद्रङ्ग) मे ३ लाख सुवर्ण दे कर, यह शर्त कर लेता है कि शेष मूल्य वह माल ले जाने पर दे देगा। इस प्रकार सौदा तै हो जाने पर पूर्ण, माल पर अपनी मुहर लगा कर (स्वमुद्रालक्षितम्) चला जाता है। यह समाचार ज्ञात होने पर वह श्रेणी पूर्ण को बुला कर उसे श्रेणी द्वारा किये गए नियम को वतलाती है। परन्तु पूर्ण इस नियम को नही मानता क्योंकि इस नियम को वनाते समय वह अथवा उसके भाई नही वुलाए गए थे। इस पर क्रुद्ध होकर वणिग्-ग्राम उस पर ६० कार्षापण का दण्ड निर्धारित करता है। अन्त मे, राजा के पास यह वात पहुँचने पर पूर्ण की ही विजय होती है।[2]

O

---

१. पूर्णावदान, पृ० १९।
२. वही, पृ० १९-२०।

परिच्छेद ४

अन्य व्यवसाय

वस्त्र उद्योग काफी प्रगति कर चुका था। कपास से स्वच्छ सूत्र काता जाता था।[1] कई प्रकार के तन्तुओ से वस्त्र बनाये जाते थे। ऊनी कपड़े भी अधिक मात्रा मे बनाये जाते थे। तत्कालीन कुछ प्रमुख वस्त्रो के नाम ये हैं—कौशेय[2], क्षौम[3], काशिक[4], सणशाटिका[5], कर्पास[6], ऊर्णादुकूल[7], कम्बल[8] इत्यादि।

कपडे रंगे भी जाते थे। शुक्ल[9] या अवदात[10] वस्त्रो के अतिरिक्त नीले[11], पीले[12], लाल[13] और काषाय[14] वस्त्रो का भी उल्लेख हुआ है।

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०–१७१।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६६।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
३. वही, पृ० १६६।, वही, पृ० ४७४।
४. पूर्णावदान, पृ० १७।, चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६६।, रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
५. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२।
६. रुद्रायणावदान, पृ० ४७४।
७. चन्द्रप्रभ०, पृ० १६६।
८. वही, पृ० १६६।
९. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
१०. पूर्णावदान, पृ० १७।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
११. सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।: चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
१२. पूर्णावदान, पृ० १७।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
१३. वही, पृ० १७।, वही, पृ० १६३।, सुधनकुमारावदान, पृ० २८८।
१४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।

"कुणालावदान" में एक स्थान पर वस्त्र रंगने के लिए कटाहक (वस्त्र रंगने का पात्र) और रंग का उदाहरण प्राप्त होता है।[१] प्रकृति भिक्षुणी के द्वारा उस आसन पर बैठे ही बैठे, चार आर्य सत्यो के हृदयगम करने की उपमा, ऐसे मल-रहित वस्त्र से दी गई है, जो रंगीन जल (रङ्गोदक) मे डालते ही तत्काल रग ग्रहण कर लेता है।[२]

उस काल मे अधिक कीमती कपडे भी होते थे, जिन्हे "महार्ह" कहते थे।[३] राजाओं के यहाँ रत्न-सुवर्ण जटित कपड़े होते थे।[४]

राजाओं के यहाँ सौ शलाकाओ वाले छत्रों (शतशलाकं छत्रम् और सौवर्ण मणि व्यजनो का अस्तित्व तत्कालीन सिलाई के प्रचार का सूचक है।[५]

इस के अतिरिक्त कई अन्य उपयोगी उद्योग धन्धे प्रचलित थे। अनेक मंजिल वाले भवनों, प्रासादों एव स्तूपो का निर्माण कुशल स्थपतियो का अस्तित्व प्रकट करता है।[६] चित्रकार प्रतिमाओं का चित्रण करता था।[७] कुंभकार मिट्टी के वर्तनो का निर्माण करते थे।[८]

दूकानें "आपण"[९] या "आवारी"[१०] के नाम से सबोधित की जाती थी। ये दूकाने कई तरह की होती थी। तैल आदि सुगन्धित पदार्थो वाली दूकानें "गान्धिकापण"[११], पाव रोटी विस्कुट आदि की दूकाने "औकरिका-

---

१. कुणालावदान, पृ० २६० ।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७ ।
३. रुद्रायणावदान, प० ४६५ ।
४. चन्द्रप्रभ०, पृ० १९९ ।
५. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७७ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४४४ ।
६. कोटिकर्णावदान, प० २ ।, ज्योतिष्कावदान, पृ० १७२ ।, रुद्रायणवदान,पृ० ४७१
७. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६ ।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४ ।
९. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९९ ।, धर्मरुच्यवदान, पृ० १५७ ।
१० पूर्णावदान, पृ० १६, १७ ।
११. पांशुप्रदाना०, पृ० २१८ ।

(ओत्करिका, उत्करिका-) पण"[1] सोने-चाँदी आदि अलंकारो की दूकानें "हैरण्यिकापण"[2], शक्कर की दूकान "शर्करावारी"[3], फुट्टकवस्त्र की दूकान "फुट्टकवस्त्रावारी"[4] तथा काशिक वस्त्रो की दूकान "काशिकवस्त्रावारी"[5] कहलाती थी।

अनेक खनिज-पदार्थों की ओर भी संकेत है—

(१) अयस्[6]—फौलाद

(२) लोह[7]—लोहा

(३) कास्य या कंस[8]—कासा

(४) रजत,[9] रूप्य[10]—चाँदी

(५) सुवर्ण,[11] कनक,[12] जाबूनद,[13] हेम,[14] हिरण्य,[15] शतपल[16]—सोना

(६) ताम्र[17]—ताँबा

---

१. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९६।
२. वही, पृ० ४९६।
३. पूर्णावदान, पृ० १८।
४ वही, पृ० १८।
५. वही, पृ० १८।
६. कोटिकर्णावदान, पृ० ४।
७ वही, पृ० ४।, अशोकावदान, पृ० २८०।
८ ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।
९. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
१०. अशोकावदान, पृ० २८०।
११. वही, पृ० २८०।
१२. वीतशोकावदान, पृ० २७३।
१३. इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४९-५०। तोयिकामहावदान, पृ० ३०४-३०५।
१४. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।
१५. वही, पृ० ५०६।
१६. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३।
१७. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।

(७) त्रपु[1]—टीन, रांगा

(८) अभ्र[2]—अबरक

सोने और चाँदी का प्रयोग पात्र[3] और आभूषण[4] के लिए होता था। सोने को तपाकर उसे स्वच्छ किया जाता था। शरीर के आदर्श वर्ण का वर्णन तपाये सोने से किया गया है।[5]

O

1. पूर्णावदान, पृ० १६।
2. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।
3. अशोकावदान, पृ० २८०।
4. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६।
5. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०४।

परिच्छेद ५

जीविका के साधन

"दिव्यावदान" मे ऐसे विभिन्न श्रमिको का उल्लेख है, जो नाना-विध उपायो से अपनी जीविका का निर्वाह करते थे।

(१) कर्षक—खेती करने वाले किसानो को कर्षक की सज्ञा दी गई।[1] ये कृषि-कर्म मे ही निरत रहकर, उसी से अपनी जीविका चलाते थे। गृहपति बलसेन नित्य प्रति कृषि-कर्म मे ही संग्लन दिखाई पडता है।[2] "मैत्रेयावदान" मे भी जम्बुद्वीप निवासी-मनुष्यो के द्वारा कृषि-कर्म किये जाने का उल्लेख है।[3]

(२) कुम्भकार—ये मिट्टी के घड़े आदि बनाकर अपनी जीविका चलाते थे।[4]

(३) कुविन्द—इनका कार्य अनेक प्रकार के वस्त्रो को बुनकर निर्माण करना था। "ज्योतिष्कावदान" मे एक कुविन्द के द्वारा सहस्र कार्षापण मूल्य वाली यमली के निर्माण किए जाने का उल्लेख है।[5]

(४) कर्णधार—ये नाव खेने वाले मल्लाह होते थे[6], जो सामुद्रिक अथवा नदियो द्वारा व्यापार करने वालो को उनके गन्तव्य स्थल पर पहुँचा कर उनसे तर्पण्य ग्रहण करते थे।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२६।
२ कोटिकर्णावदान, पृ० २।
३. मैत्रेयावदान, पृ० ३६।
४ चूडापक्षावदान, पृ० ४३४, ४४२।
५ ज्योतिष्कावदान, पृ० १७१।
६ धर्मरुच्यवदान, पृ० १४२।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३८।

(५) वणिक्—वाणिज्य द्वारा अपनी जीविका-यापन करने वालों को वणिक् कहा गया है।[१]

(६) गणिका—मथुरा में वासवदत्ता नाम की एक गणिका का उल्लेख है, जिसका शुल्क (फीस) ५०० पुराण था[२]।

(७) चोर—श्रावस्ती और राजगृह के मध्यस्थित महाटवी मे निवास करने वाले एक सहस्र चोरो का उल्लेख है, जिनके पास कृषि, वाणिज्य या जीविका के अन्य साधन न होने के कारण वे मार्ग में जानेवाले पथिको का धन लूट कर अपनी जीविका निर्वाह करते थे।[३]

(८) पशुपालक और गोपालक[४]—कुछ लोग पशुपालन भी करते थे। इन पशुओ मे गाय का प्रमुख स्थान ज्ञात होता है।

(९) नैमित्तिक और लक्षणज्ञ—शुभाशुभ निमित्तो और लक्षणो को जानने वाले भी थे।[५]

(१०) भूततन्त्रविद्—भूत-प्रेत-ग्रह आदि के आवेशो को जानने वालों का स्थान था।[६] लोग किसी अनिष्ट के उपस्थित होने पर इन्हे भी बुलाते थे।

(११) वैद्य—ये रोगो की चिकित्सा करते थे।[७]

(१२) वृद्ध-युवति (दाई)—इनका कार्य प्रसव-काल उपस्थित होने पर वच्चे को सुव्यवस्थित ढग से उत्पन्न कराना होता था। वच्चे के जीवित रहने के लिए ये कुछ उपायो का भी निर्देश करती थी।[८]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२९।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१९।
३. सुप्रियावदान, पृ० ५९।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४८५।
५. कुणालावदान, पृ० २६३।
६. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४५।
७. पूर्णावदान, पृ० १५।
८. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।

(१३) धात्री – धात्रियो का कार्य सम्यक् रूपेण लालन-पालन करना था।[1]

(१४) भृतक[2]—ये मजदूरी करके अपनी जीविका चलाते थे।

(१५) अयस्कार—ये ऐसी सुइयो (सूचियों) का निर्माण करते थे, जो जल मे तैरती थी।[3]

(१६) चित्रकार—वस्त्रो पर भी ये प्रतिमाओ का चित्रण करते थे।[4]

(१७) अहितुण्डिक—जो सर्पों के द्वारा अपनी जीविका-यापन करते थे।[5]

(१८) लुब्धक—लुब्धक मछलियो[6] तथा मृगो[7] का शिकार कर अपना पेट पालते थे।

(१९) गोघातक—ये वृषभ के मांस द्वारा अपने परिवार का पोषण करते थे।[8]

(२०) सौकरिक—शूकरो के माँस-विक्रय द्वारा जीविका चलाने वालों को सौकरिक कहते थे।[9]

(२१) औरभ्रक—उरभ्रो को मार कर उनके माँस-विक्रय से जीविका चलाने वाले भी थे।[10]

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८७।
२. सहसोद्गतावदान, पृ० १८८।
३. माकन्दिकावदान पृ० ४५०।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २८४, चूडापक्षावदान, पृ० ४३५। स्वागतावदान, पृ० ११६।
६. सुधनकुमारावदान, पृ० २८४।
७. रुद्रायणावदान, पृ० ४६०।
८. अशोकवर्णावदान, पृ० ८५।
९. चूडापक्षावदान, पृ० ४३६।
१०. कोटिकर्णावदान, पृ० ६।

(२२) गान्धिक—तेल आदि सुगन्धित पदार्थों को वेचने वाला ।[1]

(२३) शस्त्रोपजीवी—शस्त्रों से आजीविका चलाने वाला ।[2]

(२४) नापिनी—स्त्रियाँ भी केश श्मश्रुच्छेदन करती थी ।[3]

(२५) मालाकार—माली ।[4]

(२६) शाकुनिक—शिकारी या वहेलिया ।[5]

(२७) तन्नवाय—बुनकर ।[6]

(२८) स्थपति—शिल्पी ।[7]

(२९) गणक—ज्योतिषी ।[8]

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१८ ।

२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७ ।

३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३३ ।

४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५३ ।

५. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६ ।

६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५ ।

७. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७८ ।

८. कनकवर्णावदान पृ० १८१ ।

परिच्छेद ६

मुद्रा

पारिश्रमिक देने या अन्य व्यापार-क्रियाओ में मुद्राओ (सिक्को) का प्रचलन था। सब से अधिक कार्षापरण का उल्लेख हुआ है। मजदूरी कार्षापणों मे दी जाती थी[१] या ऐसे भी मजदूर थे, जिन्हे कृषि-कर्म के लिए भक्त (भोजन) पर रखा जाता था।[२] उस समय गोशीर्ष चन्दन का मूल्य बहुत अधिक था। "पूर्णावदान" में पूर्ण नामक व्यक्ति गोशीर्षचन्दन का चूर्ण एक सहस्र कार्षापण में बेचता है।[३]

कार्षापण के बाद "दीनार" भी अधिक प्रचलित था। एक बार राजा अशोक यह घोषणा करते हैं कि जो मुझे निर्ग्रन्थक का शिर ला कर देगा, उसे मैं, "दीनार" दूँगा।[४] इसी प्रकार पुष्यमित्र ने एक बार श्रमण का शिर ले आने वाले को सौ "दीनार" देने की घोषणा की थी।[५]

"पुराण" नामक मुद्रा का भी उदाहरण प्राप्त होता है। मथुरा में वासवदत्ता नाम की एक महार्घ गणिका की फीस पाँच सौ "पुराण" थी।[६]

---

१. पूर्णावदान, पृ० २६।

२. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५५।

३. पूर्णावदान, पृ० १६।

४. वीतशोकावदान, पृ० २७७।

५. अशोकावदान, पृ० २८२।

६. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१६।

इनके अतिरिक्त "निष्क"[१], "सुवर्ण"[२] और "माषक"[३] सिक्को का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

तत्कालीन प्रचलित मुद्राओं की तालिका—

(१) कार्षापण।
(२) माषक
(३) पुराण
(४) सुवर्ण
(५) दीनार
(६) निष्क

[१] कार्षापण

कार्षापण के विषय में यह उल्लेख मिलता है कि एक शिल्पी को ५०० कार्षापण प्रतिदिन देने की चर्चा हुई है।[४] एक दूसरे स्थल पर पूर्ण ५०० कार्षापण से गोशीर्षचन्दन के एक लट्ठे को खरीदता है।[५] इसी प्रकार जब भविल-पत्नी अपने बालको के लिए कुछ खाद्य-पदार्थ ले आने के लिए कहती है तो पूर्ण उस से कार्षापण देने के लिए कहता है।[६] इन उल्लेखो से यह प्रतीत होता है कि कार्षापण दैनिक व्यवहार का कोई छोटा सिक्का था। इसके लिए "पूर्णावदान" मे "आरकूटाकार्षापणान्" यह प्रयोग भी प्राप्त होता है।[७] इससे कार्षापण किस धातु का सिक्का था, इस पर प्रकाश पड़ता है। मनुस्मृति के अनुशीलन से विदित होता है कि कार्षापण तांबे का सिक्का होता था।[८] अन्य पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजो मे भी इसी बात की पुष्टि होती है।[९]

---

१ इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४६।
२. पूर्णावदान, पृ० १६-२०। माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।
३. वही, पृ० १८।
४. पूर्णावदान, पृ० २६।
५. वही, पृ० १६।
६. वही, पृ० १८।
७. वही, पृ० १८।
८. मनुस्मृति, अध्याय ८, श्लोक १३६।
९ पुरातत्व निबन्धावली—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २५६।

कही-कही चाँदी के कार्षापण का भी उल्लेख मिलता है।[1] किन्तु इस अवदान में आरकूट शब्द का प्रयोग होने से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय पीतल (आरकूट) के कार्षापण का प्रचलन था, क्योंकि सभी प्रामाणिक कोशों में आरकूट शब्द का अर्थ पीतल ही किया गया है।[2]

[२] माषक

यह कार्षापण की अपेक्षा छोटा सिक्का रहा होगा[3], क्योंकि जब पूर्ण भाविल-पत्नी से कार्षापण माँगता है तो वह पहले उसे कार्षापण देने मे आना-कानी करती है और बाद में एक माषक उसे देती है।[4] इसके लिए भी "आरकूटमाषक" शब्द का प्रयोग होने से यह भी पीतल का ही सिक्का प्रतीत होता है।

[३] पुराण

पुराण अवश्य ही कार्षापण की अपेक्षा बडा सिक्का रहा होगा। जैसा कि इस सन्दर्भ से प्रतीत होता है—मथुरा की वासवदत्ता नाम की महार्घ गणिका की फीस ५०० पुराण थी। वह उपगुप्त पर आसक्त हो गई और उसे बुलाने के लिए अपनी दासी को भेजा। जब वह नही आया तो वासवदत्ता ने सोचा कि वह वस्तुत: ५०० पुराण न दे सकने के कारण नही आ रहा है। अतः पुनः अपनी दूती को सन्देश देकर प्रेषित किया कि मुझे आपसे कार्षापण की भी अपेक्षा नही।[5]

यह सिक्का किस धातु का था, यह दिव्यावदान से ज्ञात नही होता। किन्तु मनुस्मृति से विदित होता है कि यह चाँदी का सिक्का होता था।[6]

---

१. पुरातत्त्व निबन्धावली, पृ० २५५।
२. A Sanskrit English Dictionary Sir M. Williams (page, 149), The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte, page, 85), हलायुध कोश—सं० जय शंकर जोशी, पृ० १५३।
३. पूर्णावदान, पृ० १८। और इसकी तुलना कीजिए—पुरातत्व निबन्धावली राहुल सांकृत्यायन, पृ० २५३।
४. पूर्णावदान, पृ० १८।
५. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१८-२१९।
६. मनुस्मृति, अध्याय ८, श्लोक १३६।

मोनिअर विलियम ने भी अपने कोश में इसे चाँदी का सिक्का माना है।[१] इसी प्रकार आप्टे ने भी इसे चाँदी का ही सिक्का कहा है जो ८० कौड़ी के बराबर होता था।[२]

[४] सुवर्ण

"पूर्णावदान" में "सुवर्णलक्षाः" शब्द का प्रयोग किया गया है[३] तथा "माकन्दिकावदान" में "सुवर्णलक्ष" तथा "सुवर्णस्य लक्ष" शब्दो का प्रयोग किया गया है।[४] इससे यह प्रतीत होता है कि सुवर्ण नामक मुद्रा का उस समय प्रचलन था। किन्तु इसका आपेक्षिक मूल्य क्या रहा होगा यह अवदान के सन्दर्भों से ज्ञात नही होता। मनुस्मृति के अनुशीलन से यह विदित होता है कि १६ माशे का परिमाण सुवर्ण कहलाता था। इस परिमाण वाला सिक्का भी सुवर्ण कहलाता था।[५] मनुस्मृति की कल्लूक की टीका मे कहा है कि परिमाणवाची सुवर्ण शब्द पुलिंग है।[६] इससे ध्वनित होता है कि मुद्रा-वाचक सुवर्ण शब्द नपुंसक लिंग रहा होगा, किन्तु मृच्छकटिक के प्रयोग से यह विदित है कि मुद्रावाची सुवर्ण शब्द पुंलग में भी प्रयुक्त होता था।[७]

'सुवर्ण' संज्ञा से ही प्रकट होता है कि यह सुवर्ण का सिक्का रहा होगा। वी० एस० आप्टे और मोनिअर विलियम ने इसे स्वर्ण का सिक्का कहा है।[८]

---

१. A Sanskrit English Dictionary—Sir M. Williams (page, 635)
२. The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte (page, 342)
३. पूर्णावदान, पृ० १६-२०।
४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।
५ मनुस्मृति। अध्याय ८, श्लोक १३४।
६. वही, अध्याय ८, श्लोक १३४ की कुल्लूक टीका।
७ "नन्वहं दशसुवर्णान् प्रयच्छमि", मृच्छकटिक २-३।
८. The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte, (page, 609), A Sanskrit English Dictionary—Sir M. Williams (page, 1236)

[५] दीनार

अवदान के ऊपर निर्दिष्ट सन्दर्भो मे "दीनारः" तथा "दीनारशतं" शब्दों का प्रयोग किया गया है।[१] किन्तु दीनार किस धातु का और किस मूल्य का सिक्का था यह इन सन्दर्भों से ज्ञात नही होता। वी० एस० आप्टे[२] और मोनिअर विलियम के अनुसार यह एक विशेष प्रकार का सोने का सिक्का था। मोनिअर विलियम के अनुसार इसका मूल्य समय-समय पर बदलता रहा।[३]

[६] निष्क

"इन्द्रनामब्राह्मणावदान" और "तोयिकामहावदान" मे "शतंसहस्राणि सुवर्णनिष्का" इस वाक्यांश का कई बार प्रयोग हुआ है[४], जिससे यह विदित होता है कि निष्क सोने का सिक्का रहा होगा। इसके परिमाण तथा मूल्य के विषय मे अवदान से कुछ ज्ञात नही होता। विविध ग्रन्थो के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि निष्क का परिमाण तथा मूल्य समय-समय पर बदलता रहा होगा। मनुस्मृति के अनुसार निष्क का परिमाण चार सुवर्ण के बराबर था।[५] हलायुध कोश के अनुसार निष्क ४ सुवर्ण मुद्रा के बराबर था।[६] अमरकोश के अनुसार निष्क १०८ सुवर्ण के बराबर था।[७] अमरकोश के

---

१. वीतशोकावदान, पृ० २७७।, अशोकावदान, पृ० २८२।

२. The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte, (page, 252)

३. A Sanskrit English Dictionary—Sir M. Williams, (page, 481)

४. इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४६।, तोयिकामहावदान, पृ० ३०४-३०५।

५. मनुस्मृति। अध्याय ८, श्लोक १३७।

६. हलायुधकोश—संपादक जयशंकर जोशी, पृ० ३१८।

७. अमरकोश, तृतीयकाण्ड, नानार्थवर्ग।

अनुसार निष्क और दीनार समानार्थक है।[1] वी० एस० आप्टे[2] और मोनिअर विलियम[3] के अनुसार भी यही प्रकट होता है कि निष्क एक सोने का सिक्का था, जिसका परिमाण तथा मूल्य समय-समय पर बदलता रहा।

O

१. अमरकोश, तृतीयकाण्ड, नानार्थवर्ग।

२. The Students' Sanskrit English Dictionary—V. S. Apte (page, 298)

३. A Sanskrit English Dictionary— Sir M. Williams (page, 562)

चौथा अध्याय

राजनीति

परिच्छेद १ राजा

परिच्छेद २ मंत्री

परिच्छेद ३ न्याय-तंत्र

परिच्छेद ४ युद्ध

परिच्छेद ५ दंड-व्यवस्था

परिच्छेद ६ कर

परिच्छेद ७ अधिकारी एवं सेवक-गण

परिच्छेद १

राजा

[क] धार्मिक और अधार्मिक राजा

राजैवकर्ता भूतानां राजैव च विनाशकः ।
धर्मात्मा यः स कर्ता स्यादधर्मात्मा विनाशकः ।[1]

श्वेतकेतु के इस कथनानुसार धार्मिक राजा ही प्रजा का रक्षक होता है। अपने धर्मानुष्ठानो के फलस्वरूप ही वह जन-शक्ति के मध्य एक अभ्यर्हणीय व्यक्ति के रूप मे प्रतिष्ठित होता है। जहाँ कही भी प्रजा का राजा के प्रति स्नेह एवं समादृत दृष्टिकोण दिखलाई पड़ता है, वह उसकी चारित्रिक दृढ़ता, त्यागमय जीवन, तपस्वी एवं सत्पथानुयायी होने के कारण ही है। राजा के लिए शील ही परम धर्म है। अस्तु, एक मात्र शील-सम्पन्न राजा ही जनता का हितचिन्तक एवं विश्वासार्ह होता।

भद्रशिला नामक राजधानी मे चन्द्रप्रभ नाम का एक धार्मिक राजा राज्य करता था। वह सर्वपरित्यागी था। उसने इतना दान दिया कि समस्त जम्बुद्वीप वासी महाधनी हो गए। हस्ति, अश्व, रथ और छत्र का इतना अधिक दान दिया कि जम्बुद्वीप के प्रत्येक मनुष्य हाथी, घोडो और रथों पर चलने लगे। उसने समस्त जम्बुद्वीप निवासियो को नानाविध आभूषण और मौलिपट्ट-वस्त्र प्रदान किये, जिससे सभी मौलिधर और पट्टधर हो गए। उसने समस्त जम्बुद्वीप-वासी मनुष्यो को यह अनुमति दे दी कि यावत्कालपर्यन्त मैं जीवित हूँ, तब तक सभी राजक्रीड़ा करें। उसके त्याग की चरमावस्था वहाँ निखर उठती है जब रौद्राक्ष ब्राह्मण के द्वारा अपने शिर की याचना किए जाने पर वह उसे सहर्ष शिरोच्छेदन की अनुमति प्रदान कर देता है।[2]

---

१. महाभारत-शान्ति पर्व, अध्याय ९१, श्लोक ९।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९६, २०१।

ऐसे मैत्रात्मक, कारुणिक, सत्त्ववत्सल, निरुपमगुणाधार एव सर्वजनमनोरथ-परिपूरक राजा के प्रति समस्त जनता ही अत्यधिक अनुरक्त है । अपने इन उदात्त गुणों के कारण ही राजा चन्द्रप्रभ सारी प्रजा का प्रिय, इष्ट एव दर्शनीय बना । वे इसकी छवि-पान करते हुए कभी तृप्त न होते थे ।

धर्म-पूर्वक राज्य करने के कारण ही राजा रुद्रायण के अपने पुत्र शिखण्डी को राज्य सौंप कर प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए जाते समय अन्तः पुर, अमात्य पुरवासी, जनपद तथा अन्य नाना-देशो से आगत जनकाय सभी उनके पीछे-पीछे जाते है । अत रुद्रायण शिखण्डी को सम्बोधित कर कहता है—"पुत्र, मया धर्मेण राज्य कारितम्, येन मे इयन्ति प्राणिशतसहस्राणि पृष्ठतोऽनुबद्धानि त वयापि धर्मेण राज्य कारयितव्यमिति" तथा उसे यह भी आदेश देता है— 'पुत्र, त्वया राज्यं कारयता कस्यचिदपराध्य न क्षन्तव्यमिति" ।[1]

राज्य की श्री-वृद्धि राजा के कर्मो पर निर्भर होती है । राजा चन्द्रप्रभ के धार्मिक होने का ही यह परिणाम था कि उस की राजधानी भद्रशिला नगरी "ऋद्धा", "स्फीता" "क्षेमा", "सुभिक्षा" एव "आकीर्णवहुजनमनुष्या" थी । उसमे चतुर्दिक् चन्दनादि सुगन्धित पदार्थो से युक्त सुरभित समीर का प्रसार हो रहा था । एक ओर प्रस्फुटित पद्म, कुमुद, पुण्डरीक तथा रमणीय कमल पुष्प मण्डित स्वादु, स्वच्छ एव शीतल जल परिपूर्ण तडाग, कूप और प्रस्रवण का नयनाभिराम दर्शन होता है तो दूसरी ओर ताल, तमाल, कर्णिकार, अशोक, तिलक, पुनाग, नागकेसर, चम्पक, वकुल, पाटलादि पुष्पो से आच्छादित एवं कलविंक, शुक, शारिका, कोकिल, मयूर, जीवजीवक आदि नानाविध पक्षि-गण निकूजित वनषण्डोद्यान हमारे चित्त को वरवस आकृष्ट कर लेता है । तत्रस्य मणिगर्भ राजोद्यान का मनोरम दृश्य भी अवलोकनीय है । इस प्रकार भद्रशिला नगरी अमरालय-सदृश विराजमान थी ।[2]

हस्तिनापुर मे उत्तर-पाचाल महाधन नामक एक धार्मिक राजा राज्य करता था । उसका नगर सुसमृद्ध, सर्वक्षेमयुक्त, तस्कर, दुर्भिक्ष और रोगादि से रहित था । उसके राज्य मे समय-समय पर यथेष्ट वर्षा होती थी, जिससे

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७२ ।

२. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९५ ।

प्रभूत शस्य-सम्पत्ति का प्रादुर्भाव हो गया था। वह राजा श्रमण, ब्राह्मण, कृपण और याचकों को दान देता था तथा उनका सत्कार भी करता था।[1]

महाधनी एवं महाभोगी राजा कनकवर्ण धर्मानुसारेण राज-कार्य का प्रतिपादन करता था। उसके धार्मिक होने से सर्वत्र सुभिक्ष का ही अवलोकन होता है। उसकी राजधानी कनकावती पूर्व और पश्चिम से १२ योजन लम्बी एव उत्तर दक्षिण से ७ योजन विस्तृत थी। राजा कनकवर्ण के राज्य मे ८० हजार नगर, १८ कुलकोटी, ५७ ग्रामकोटी एवं ६० हजार कर्वट (ग्राम) थे। सभी ऋद्ध, स्फीत, क्षेम-युक्त, सुभिक्ष और आकीर्ण-बहुजन मनुष्य थे।[2]

कुछ राजा ऐसे थे, जो अपने राज्य का पालन एकलौते बेटे के समान करते थे। वाराणसी का राजा ब्रह्मदत्त अपने राज्य का पालन इसी रूप मे करता था।[3]

दूसरी ओर राजा के अधर्म एवं क्रूराचरण से संत्रस्त जनता तदितर सद्धर्मपरायण राजा का आश्रय लेती थी। दक्षिणपांचाल राजा अधर्मभूयिष्ठ, महाचण्ड, क्रोधी एवं कर्कश स्वभाव का था। वह नित्य ही राष्ट्रनिवासियों को घातन, धारण, बन्धन, हडि, निगडादि उपायो द्वारा त्रस्त किया करता था, जिससे समस्त जनकाय देश का परित्याग कर मैत्रात्मक एवं अनुकम्पा युक्त चित्त वाले उत्तरपांचाल राजा के राज्य मे चला जाता है।[4]

महाप्रणाद राजा के भी अधर्मपूर्वक राज्य करने का उल्लेख है। अधर्मपूर्वक राज्य करने से राजा का विनिपात नरक मे होता था। इसीलिए देवेन्द्र शक्र महाप्रणाद के अधर्मपूर्वक राज्य करने से उसे मना करते है।[5]

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८३।
२. कनकवर्णावदान, पृ० १८०।
३. मेण्ढकावदान, पृ० ८२।
४. सुधनकुमारावदान, पृ० २८३।
५. मैत्रैयावदान, पृ० ३६।

[ख] पंच-ककुद

राजा के पाँच राजकीय चिन्ह माने गये हैं—

(१) उष्णीष
(२) छत्र
(३) खड्गमणि
(४) वाल-व्यजन
(५) उपानह ।

इनकी "पंच-ककुद" सज्ञा है । राजा विम्बिसार भगवान् बुद्ध से मिलने के लिए उनके पास जाते समय अपने इन पच-ककुदो को रख देने है ।[1]

[ग] राज्याभिषेक

राजा की हत्या कर, पुत्र द्वारा स्वयं राज्य पर प्रतिष्ठित हो जाने का उदाहरण प्राप्त होता है । अजातशत्रु अपने पिता की हत्या कर स्वयं ही पट्ट बाधकर राज्य पर अधिकार कर लेता है ।[2]

इसके विपरीत राज्य-भार सहर्ष सोंपे जाने पर भी कुछ लोग उसे स्वीकार करने के लिए राजगृह नही जाते थे । उपोपध राजा की मृत्यु हो जाने पर अमात्यगण, उसके पुत्र मान्धात के पास राज्याभिषेक का सन्देश भेजते है । किन्तु वह कहता है—

"यदि मम धर्मेण राज्यं प्राप्स्यते, इहैव राज्याभिषेक आगच्छतु" ।[3]

ज्ञात होता है कि राज्याभिषेक-कर्म अधिष्ठान के मध्य रत्नशिला पर स्थित श्रीपर्यक (राज-सिहासन) पर किया जाता था । क्योकि ये सभी वस्तुएँ अमात्यो के निर्देश करने पर दिवौकस नामक यक्ष के द्वारा शीघ्र ही उपस्थित की जाती है । इतनी तैयारी हो जाने पर मान्धात फिर कहता है—

---

१. प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ९१ ।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७३ ।
३. मान्धातावदान, पृ० १३० ।

"यदि धर्मेण राज्यं प्राप्स्यते, अमनुष्याः पट्टं बन्धन्तु" ।[1]

अशोक भी राज्याभिषेक के पूर्व, अपने पिता बिन्दुसार के रुष्ट होने पर कहते है—

"यदि मम धर्मेण राज्यं भवति, देवता मम पट्टं बन्धन्तु" ।[2]

[घ] राजा का चुनाव

राजा की अपुत्र मृत्यु हो जाने पर ही राजा के चुनाव का प्रश्न उठता था। समाज मे श्रेष्ठ व्यक्तियो का आदर होता था। लोग चरित्रवान् व्यक्ति को एक मत हो राजा चुन लेते थे। उत्पलावती राजधानी में राजा की बिना किसी सन्तान के ही मृत्यु हो जाने पर महामात्रगण सोचते है—"नान्यत्र रूपावतकुमारात्कृतपुण्यात्कृतकुशलात्" और वे रूपावत कुमार को राज-पद पर प्रतिष्ठित कर देते है।[3]

एक अन्य स्थल पर भी राजा की अपुत्र मृत्यु हो जाने पर जनता द्वारा सात्विक एव प्राज्ञ व्यक्ति को राज-पद पर अभिषिक्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है। राक्षसियो द्वारा अन्तःपुर सहित सिंहकेसरी राजा को खा लिये जाने पर समस्त पौर, अमात्य एव जनपद-निवासी सार्थवाह सिंहल को, सात्विक एव प्राज्ञ देख कर उसे राज्य पर अभिषिक्त कर देते है।[4]

[ङ] प्रजावत्सलता

कनकवर्णावदान मे राजा का अपने राज्य एव प्रजा के प्रति अखण्ड स्नेह देखने को मिलता है। नैमित्तिको के द्वारा किये गए निर्घोष को सुन कर राजा कनकवर्ण अश्रु-प्रवाह करता हुआ कहता है—

"अहो बत से जाम्बुद्वीपका मनुष्याः, अहो बत मे जम्बुद्वीपः ऋद्धः, स्फीतः, क्षेमः सुभिक्षो रमणीयो बहुजनाकीर्णमनुष्यो नचिरादेव शून्यो भविष्यति रहितमनुष्यः।"

---

१. मान्धातावदान, पृ० १३०-३१।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५।
३. रूपावत्यावदान, पृ० ३०६।
४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५४।

राजा को दरिद्र, अल्पधन और अल्प अन्न-पान-भोग वाले मनुष्यो के जीवन-यापन की चिन्ता होती है और एतदर्थ वह गणक, महामात्रामात्य, दौवारिक एवं पारिषद्यो को बुला कर समस्त जम्बुद्वीप से अन्नादि को एकत्र करने, उन खाद्यान्नो का माप करने तथा सभी ग्राम, नगर, निगम, कर्वट और राजधानी में एक कोष्ठागार की स्थापना करने का आदेश देता है। उन लोगो के द्वारा ऐसा कर लिये जाने पर वह सख्या-गणक और लिपिको से सभी मनुष्यों की गणना कर उन मे सम-वितरण करने के लिये कहता है।[1]

[च] धर्म-कार्य में सहायता

भगवान् क्षेमंकर बुद्ध क्षेमावती राजधानी में विहार करते थे। बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने पर राजा क्षेम एक चैत्य की स्थापना करता है। साथ ही स्तूप चैत्यादि के निर्माण-कार्य मे अन्य लोगो को स्वीकृति एवं उचित सहायता भी प्रदान करता है। किसी वणिक् श्रेष्ठी द्वारा भगवान् बुद्ध के चैत्य को महेशाख्यतर करने का विचार प्रकट करने पर राजा क्षेम उस से कहता है—"यथाभिप्रेतं कुरु।" किन्तु ब्राह्मणो द्वारा इस कार्य मे बाधा उपस्थित किये जाने पर जब वह श्रेष्ठी पुनः राजा के पास जाता है तो वह अपने सहस्रयोधी पुरुष को उस की सहायतार्थ देता है और उसे यह आदेश देता है कि "यद्यस्य महाश्रेष्ठिनः स्तूपमभिसंस्कुर्वतः कश्चिदपनयं करोति, स त्वया महता दण्डेन शासयितव्यः"।[2]

[छ] सौहार्दपूर्ण-संबन्ध

"रुद्रायणावदान" मे एक राजा का अन्य राजा के साथ सौहार्द्र-पूर्ण संबन्ध देखने को मिलता है। एक दूसरे से सर्वथा अदृष्ट (अपरिचित) होने पर भी वे आपस में सख्य-भाव रखते थे। उनके हृदय पारस्परिक मैत्र्यात्मक बुद्ध्यनुप्राणित होते थे। एक राजा अपने लिये सुलभ वस्तुओ को अन्य राजा के पास प्राभृत (उपहार) रूप मे भेजता था, जो उस राजा के लिये दुर्लभ होती थी। यह ज्ञात होने पर कि राजा बिम्बिसार को रत्न दुर्लभ है, रुद्रायण उस के लिए प्राभृत-रूप मे रत्नो को भेजता है और साथ ही दूतों के द्वारा एक लेख (पत्र) भी देता है, जिसमे लिखता है—"प्रियवयस्य, त्व

---

१. कनकवर्णावदान, पृ० १८१।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५०।

ममादृष्टसखा। यदि तव किञ्चिद् रोरुके नगरे करणीयं भवति, मम लेखो दातव्यः। सर्वं तत् परिप्रापयिष्यामि"। वदले मे विम्बिसार, अमात्यो के यह कहने पर कि रुद्रायण को वस्त्र दुर्लभ है, उस के लिए उत्तम वस्त्रो को प्राभृत-रूप मे भेजता है और यह लेख भी देता है—"प्रियवयस्य, त्व ममादृष्टसखा। यत्किचित्तव राजगृहे प्रयोजनभवति, मम लेखो दातव्यः। तत्सर्वं परिप्रापयि-ष्यामि"।[1] इस प्रकार उन मे पारस्परिक सहयोग का एक उज्ज्वल एव समुन्नत दृष्टिकोण उपलब्ध होता है।

राजाओं की अनेक स्त्रियाँ होती थी। राजा उदयन की दो स्त्रियाँ—श्यामावती और अनुपमा, थी। इसके अतिरिक्त उसके अन्तःपुर मे ५०० अन्य स्त्रियो के होने की भी चर्चा है।[2] महाधनी एव महाभोगी राजा कनकवर्ण के अन्तःपुर मे वीस हजार स्त्रियाँ थी।[3]

अन्तःपुर तीन श्रेणियो मे विभक्त थे[4]—

(१) ज्येष्ठक

(२) मध्यम

(३) कनीयस

राजा प्रायः स्त्री के वश मे हुआ करते थे। अनुपमा के द्वारा श्यामावती को मारने के लिये कहे जाने पर माकन्दिक भयभीत हो सोचता है—"स्त्रीवशगा राजान." और शीघ्र ही श्यामावती को मारने का उपाय करने के लिये उद्यत हो जाता है।[5]

एक स्थान पर राज-पद को प्रमाद का स्थान कहा गया है। किसी च्यवनधर्मा देवपुत्र के पच पूर्वनिमित्त प्रकट होने पर देवेन्द्र शक्र उस से प्रणाद राजा की अग्रमहिषी के कुक्षि मे प्रतिसक्रान्ति (प्रतिसंधि-ग्रहण) के लिये कहते हैं, तो वह कहता है—"प्रमादस्थानं कौशिक। वहुकिल्विषकारिणो

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५।

२. माकन्दिकावदान पृ० ४५५-४५६।

३. कनकवर्णावदान, पृ० १८०।

४. कोटिकर्णावदान, पृ० २।, माकन्दिकावदान, पृ० ४५२।।

५. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७।

हि कौशिक राजानः। मा अधर्मेण राज्य कृत्वा नरकपरायणो भविष्यामीति"।[1]

[ज] चक्रवर्ती-राजा

चतुरन्तविजेता राजाओं को चक्रवर्ती की संज्ञा दी जाती थी। चक्रवर्ती धार्मिक राजा के पास-सप्त रत्न होते थे। ये रत्न इस प्रकार थे[2]—

(१) चक्र-रत्न
(२) हस्ति-रत्न
(३) अश्व-रत्न
(४) मणि-रत्न
(५) स्त्री-रत्न
(६) गृहपति-रत्न
(७) परिणायक-रत्न

o

---

१. "मैत्रेयावदान, पृ० ३५।

२. वही, पृ० ३६।, अशोकवर्णावदान, पृ० ८७।, मान्धातावदान, पृ० १३२।

परिच्छेद २

मंत्री

राज्य-शासन का मंत्री भी एक अंग होता है । अभेद्य, शुचिपरायण, स्थिर-धी, प्रभावशाली, शीलवान्, मैत्र्यादि सद्गुण-युक्त मत्री ही राजा के लिए वरेण्य है। ऐसे मंत्री का सुयोग राज्य के श्री-राहित्य का कारण नही बनता। उस का राज्य सदैव फलता-फूलता रहता है। राजा चन्द्रप्रभ के ऐसे ही साढ़े ६ हजार मन्त्री थे । इन मे से दो अग्रामात्य थे, जो अन्य अमात्यो से अधिक पण्डित, मेधावी तथा विशिष्ट गुण वाले थे।[1] राजा कनकवर्ण के राज्य मे १८ हजार अमात्यो के होने का उल्लेख है।[2]

अग्रामात्य महाचन्द्र, राजा को सत्कर्मप्रवृत्यर्थ प्रेरित करने के अतिरिक्त समस्त प्रजा-जन को भी हितकर कर्मो के अनुष्ठान का आदेश देता है । वह निरन्तर ही जम्बुद्वीप वासी मनुष्यो को दस कुश कर्मो के लिये प्रेरित करता है—"इमान् भवन्तो जम्बुद्वीपका मनुष्या दश कुशलान् कर्मपथान् समादाय वर्तथेति" ।[3]

मंत्री, राजा अथवा राज्य के अनिष्ट को नही सहन कर सकते थे। इससे उन्हें असह्य पीडा होती थी। राजा चन्द्रप्रभ और उस के राज्य के विनाश-सूचक स्वप्न को देख कर समस्त मत्रिगण कितने भयत्रस्त, चिन्तित एव दु.खी दिखाई पडते है। वे सभी शिवेतर-क्षय के लिए एक स्वर से कार करते है—

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६७।
२ कनकवर्णावदान, पृ० १८०।
३. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६७।

"मा हैव राज्ञश्चन्द्रप्रभस्य महापृथिवीपालस्य मैत्रात्मकस्य कारुणिकस्य सत्त्ववत्वलस्यानित्यतावलमागच्छेत्, मा हैव अस्माक देवेन सार्धं नानाभावो भविष्यति विनाभावो विप्रयोगः, मा हैव अत्राणोऽपरित्राणो जम्बुद्वीपो भविष्यतीति"।

महाचन्द्र अग्रामात्य ने तो इस संकट से बचने का उपाय भी ढूँढ निकाला कि यदि कोई राजा का शिरोयाचनक आया तो उसे एक रत्नमय शिर के द्वारा प्रलुब्ध किया जायगा; और तदर्थ एक रत्नमय शिर बनवा कर कोशकोष्ठागार मे रख लिया। इतना ही नही महाचन्द्र और महीधर दोनों अग्रामात्य राजा चन्द्रप्रभ का विनाश देखने मे असमर्थ हो पहले ही अपने ऐहिक शरीर का परित्याग कर देते है।[1]

राजा शिखण्डी के धर्मपूर्वक राज्य करने पर हिरु और भिरुक नाम के उस के शुभचिन्तक मन्त्री जनपद की उपमा पुष्प-फल वाले वृक्ष से देते है—

"पुष्पफलवृक्षसदृशा देव जनपदाः। तद्यथा देव पुष्पवृक्षाः फलवृक्षाश्च कालेन कालं सम्यक् परिपाल्यमाना अनुपरतप्रयोगेण यथाकालं पुष्पाणि फलानि चानुप्रयच्छन्ति, एवमेव जनपदाः प्रतिपाल्यमाना अनुपरतप्रयोगेण यथाकालं करप्रत्यायाननुप्रयच्छन्तीति"।[2]

परन्तु इस के विपरीत दूसरी ओर दो दुष्ट अमात्य उससे कहते है—

"देव नाक्रन्दिता नालुञ्चिता नातप्ता नोत्पीडितास्तिलास्तैलं प्रयच्छन्ति, तद्वन्नरपते जनपदा इति"।[3]

एक ओर भद्र एवं सदमात्यों का योग, राजा की श्री-वृद्धि तथा पुण्य-प्रसव मे एक सुदृढ कारण होता था तो दूसरी ओर इस के विपरीत, दुष्टामात्य राजा के कलमष-गर्त-पतन में कारण होते थे।

मन्त्रियो के द्वारा किये गए प्रजा-पीडन के भी उदाहरण प्राप्त होते है। अशोक के राज्य काल मे तक्षशिला के नगरवासियो ने विद्रोह प्रारंभ कर

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०१।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४७७।
३. वही, पृ० ४७७।

दिया। अशोक ने तत्प्रशमनार्थ अपने पुत्र कुणाल को भेजा। कुणाल के पहुँचने पर वहाँ के नागरिको ने उनका उचित सत्कार कर कहा—"न तो हमलोग राजकुमार के विरुद्ध है और न राजा अशोक के ही, अपितु उन दुष्टामात्यों के विरोधी है, जो हमारा अपमान करते है"।[1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर विन्दुसार के समय मे तक्षशिला के लोगों द्वारा मन्त्रियो के प्रजापीड़क शासन के विरुद्ध विद्रोह करने का उल्लेख प्राप्त होता है। राजा विन्दुसार अशोक को चतुरगिणी सेना के साथ तक्षशिला भेजते है। यहाँ भी अशोक को नगरवासियों से वैसा ही उत्तर प्राप्त होता है—

"न वयं कुमारस्य विरुद्धाः, नापि राज्ञो विन्दुसारस्य, अपितु दुष्टामात्या अस्माकं परिभवं कुर्वन्ति"।[2]

o

---

१. कुणालावदान, पृ० २६३।
२. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३४।

परिच्छेद ३

न्याय-तन्त्र

तत्कालीन न्याय-पद्धति, तात्कालिक और निष्पक्ष थी। वादी और प्रतिवादी दोनों राजा के समक्ष पहुँचते थे और राजा उनका न्याय करता था। किसी वकील और अदालती खर्च की आवश्यकता न थी। एक वार वणिग्-ग्राम अपने वनाये हुए नियम के भग किये जाने के अभियोग में क्रुद्ध होकर पूर्ण पर ६० कार्पापणो का जुर्माना (आतप) घोपित करता है। यह वात राजा को ज्ञात होने पर वह पूर्ण और वणिग्-ग्राम को अपने पास वुलवाते है। राजा वणिग्-ग्राम से, पूर्ण पर किये गये जुर्माने का कारण पूछते है। वे कहते है—"देव ! वणिग् ग्राम ने यह क्रियाकार (समझौता, नियम) किया था, कि कोई भी व्यक्ति अकेला पण्य को नही खरीदेगा। किन्तु पूर्ण ने अकेले ही खरीद लिया हे"। पूर्ण कहता है—"देव ! क्या इन लोगों ने क्रियाकार करते समय मुझे या मेरे भाई को वुलाया था ?" इस पर वे कहते हैं—"देव ! नही।" इस प्रकार दोनो पक्षो की वात सुनकर राजा यह अन्तिम न्याय करते है—

"भवन्तः, शोभनं पूर्णः कथयति"।[1]

कितनी सरल, सुगम एव सुन्दर यह न्याय-विधि थी ! दोनो पक्षो के यथार्थ वातो की जानकारी और फिर तत्काल निर्णय। न वकीलो की झक-झक, न धन का अपव्यय और न दस-पन्द्रह वर्ष की लम्वी अवधि।

O

---

१ पूर्णावदान, पृ० २०।

परिच्छेद ४

युद्ध

अमर्ष के कारण राष्ट्रापमर्दन किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। धनसंमत राजा यह सोचता था कि केवल मेरा ही राज्य समृद्ध, स्फीत, क्षेम, सुभिक्ष एवं आकीर्णबहुजन-मनुष्य है। किन्तु मध्यदेश से आगत वणिकों के द्वारा यह ज्ञात होने पर कि मध्यदेश के वासव राजा का भी राज्य ऐसा ही है, उसे अमर्ष उत्पन्न होता है और वह चतुरंगिणी सेना का संनाह कर मध्य-देश के राज्य को विनष्ट करने के लिए जाता है।[1]

[क] सेना

सेना के लिए "वलकाय"[2] या "वलौघ"[3] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। राजा के यहाँ उचित सैन्य-शक्ति रहती थी। किसी कार्वटिक (गाँव के मुखिया) आदि के विरुद्ध होने पर, वह उसके विनाश के लिए सेना भेजता था।[4]

राजा के यहाँ चतुरंगिणी सेना रहती थी। चतुरंग वलकाय के चार अंग थे[5]—

(१) हस्तिकाय
(२) अश्वकाय
(३) रथकाय
(४) पत्तिकाय (पदाति)

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।
२. वही, पृ० ३८।
३. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।
४. वही, पृ० २८६।
५. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।

राजपदाभिषिक्त सार्थवाह सिंहल चतुरंग बलकाय का संनाह कर ताम्रद्वीप से राक्षसियों को निर्वासित करने जाता है।[1]

किसी कार्वटिक के विरुद्ध होने पर राजा तत्प्रशमनार्थ दण्डस्थान (सैन्य-समूह) भेजता था। दो-तीन बार भेजने पर भी जब अपने सैन्य समूह की पराजय होती थी, तो राजा स्वयं जाता था और जो भी शस्त्रोपजीवी वहाँ रहते थे, उन सबको साथ चलने का आदेश देता था।[2]

[ख] प्रहरण-उपकरण

नाना-विधि प्रहरण-उपकरणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है—

(१) खड्ग[3] या असि[4]—तलवार
(२) मुसल[5]
(३) तोमर[6]—अस्त्र विशेष "गंड़ासा"
(४) पाश[7]—बाँधने का उपकरण "रस्सी"
(५) चक्र[8]
(६) शर[9]—तीर
(७) धनुष[10]
(८) अंकुश[11]
(९) यष्टि[12]—लाठी

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५४।
२. वही, पृ० ४५६-५७।
३. सुधनकुमारावदान, पृ० २६०।
४. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २६०।
६. वही, पृ० २६०।
७. वही, पृ० २६०।
८. वही, पृ० २६०।
९. वही, पृ० २६०।, रुद्रायणावदान, पृ० ४६०।
१०. रुद्रायणावदान, पृ० ४६०।
११ मैत्रेयावदान, पृ० ३५।, कुणालावदान, पृ० २४६।
१२. वही, पृ० ३५।

(१०) परश्वध[1]—कुल्हाड़ी
(११) क्रकच[2]—आरा
(१२) परशु[3]—फरसा
(१३) क्षुर[4]—छुरा

एक ऐसे मणिवर्म (मणियुक्त कवच) का उल्लेख प्राप्त होता है, जिस की पाँच विशेषताएँ थीं[5]—

(१) शीतकाल मे उष्ण संस्पर्श और उष्ण काल में शीत संस्पर्श गुण
(२) दुश्छेद्यता
(३) दुर्भेद्यता
(४) विषघ्नता, और
(५) अवभासात्मकता ।

O

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २६० ।
२. कुणालावदान, पृ० २७० ।
३. वही, पृ० २७० ।
४. वही, पृ० २७० ।
५. रुद्रायणावदान, पृ० ४६५ ।

परिच्छेद ५

दण्ड-व्यवस्था

तत्कालीन दण्ड-विधान अत्यन्त कठोर था। दण्ड-स्वरूप हाथ, पैर, नाक, कान काट लिए जाते थे। मथुरा निवासिनी गणिका वासवदत्ता का हाथ, पैर, कान और नाक काट कर श्मशान मे छोड दिया गया था।[1]

राजा अशोक तिष्यरक्षिता को दण्ड देने के लिए अनेक प्रकार के वध-प्रयोगो का उल्लेख करते हैं[2]—

(१) परशु-प्रहार से उसके शिर को काट डालना चाहते है।
(२) अथवा सुतीक्ष्ण नखो से, उसके दोनो नेत्र निकाल कर, उसके शरीर को ऐसे ही डलवा देना चाहते है।
(३) अथवा जीवन्तिशूला।
(४) अथवा क्रकच से उसकी नाक काट डालना चाहते हैं।
(५) अथवा क्षुर (चाकू) से उसकी जीभ कतर देना चाहते हैं।
(६) अथवा विष द्वारा उसे मार डालना चाहते है।

एक अन्य स्थल पर अयोद्रोणि मे रखकर मुशल-प्रहार द्वारा हड्डियो को चूर कर देने का भयानक दण्ड दिखलाई पडता है।[3]

राजा के आदेशानुसार दण्ड देने के लिये, राज्य मे जिन लोगो की नियुक्ति रहती थी, उन्हे "वध्यघातकपुरुष"[4] या "वधकपुरुष"[5] कहते थे।

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २१९।

२. कुणालावदान, पृ० २७०।

३. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३७।

४. वही, पृ० २३५।, वीतशोकावदान, पृ० २७२,२७३।

५. रुद्रायणावदान पृ० ४७९।

ऐसे यातना-गृहों (टॉर्चर-चैम्बर) का भी वर्णन है, जिसमें अपराधियों को दण्डस्वरूप डाल दिया जाता था। वत्सराज उदयन श्यामावती प्रमुख पाँच सौ स्त्रियो के दग्ध होने का सर्व वृतान्त जानकर क्रुद्ध हो योगन्धरायण को यह आज्ञा देता है कि वह अनुपमा सहित मकान्दिक को यन्त्रगृह में डाल कर जला दे।[1] राजा अशोक तिष्यरक्षिता को जंतुगृह में डाल कर जला देते है।[2] "चारक" कारागृह को कहते थे।[3]

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४६० ।
२. कुणालावदान, पृ० २७० ।
३. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६ ।

परिच्छेद ६

कर

कृषकों से, राजा कर वसूल करता था। एक बार महाप्रणाद राजा के राज्य मे कृषक-गण तत्रस्थ यूप का दर्शन करने में ही दत्तचित्त रहने लगे और अपना कार्य नही करते थे। फलतः कृषिकर्म के समुच्छिन्न हो जाने से बहुत थोडी मात्रा में कर इकट्ठा हो पाता था।[१]

व्यापार की वस्तुओ पर शुल्क लगता था। ऐसा स्थल जहाँ पर शुल्क-ग्रहण किया जाता था, "शुल्क-शाला" के नाम से प्रसिद्ध था।[२] शुल्क-ग्रहण करने वाले अधिकारी की "शौल्किक" संज्ञा थी।[३]

महासमुद्रावतरण करने वाले व्यापारियो से कुछ तर्पण्य-शुल्क भी वसूल किया जाता था।[४]

राज्य मे चार प्रमुख नगरद्वार होते थे। इन चारों नगरद्वारों से पृथक्-पृथक् कर आते थे। राजा कृकि ने पूर्व नगरद्वार से प्राप्त होने वाले कर को, चतूरत्नमय चैत्य एवं स्तूप के टूटने-फूटने पर उसकी मरम्मत कराने के लिए (खण्डस्फुटप्रतिसंस्करणाय) दे दिया था।[५]

०

---

१ मैत्रेयावदान, पृ० ३६।
२. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७०।
३. वही, पृ० १७०।
४ कोटिकर्णावदान, पृ० २।, पूर्णावदान, पृ० २०।
५. वही, पृ० १३।

परिच्छेद ७

अधिकारी एवं सेवक-गण

अन्तःपुर की प्रधान रानी को "अग्रमहिषी" की संज्ञा दी जाती थी।[१] अमात्यों मे प्रधान "अग्रामात्य" कहलाता था[२]। राजा के दरबार मे दो प्रकार के भृत्य रहते थे, जिन्हे "प्रियाख्यायी" और "अप्रियाख्यायी" कहते थे। प्रियाख्यायी समय-समय पर शुभ और प्रिय समाचार राजा को दिया करता था और अप्रियाख्यायी अमंगल एवं अनिष्ट की सूचना देता था। दोनो को ही समान रूप से वृत्ति दी जाती थी।[३] उपगुप्त के आगमन का शुभ समाचार देने वाले प्रियाख्यायी को, राजा अशोक शतसहस्त्र मूल्य वाला मुक्ताहार अपने शरीर से उतार कर देते है।[४]

लोग राजा को उस के अनर्थ की सूचना देने मे डरते थे। श्यामावती प्रमुख पाँच सौ स्त्रियो के दग्ध हो जाने पर कौशाम्बी-निवासी पौर गण एकत्र हो, यह विचार करते है कि हम मे से कौन इस अनर्थ की सूचना राजा को देगा? अन्त में वे अप्रियाख्यायी को यह कार्य सौपते है और तदर्थ उसे वृत्ति देने का वचन देते है। अप्रियाख्यायी उपाय द्वारा राजा से घटना का निवेदन करता है। इस पर राजा कहते है—

"भोः पुरुष, उपायेन मे त्वया निवेदितम्, अन्यथा ते मयासिना निकृन्तितमूलं शिरः कृत्वा पृथिव्यां निपातितमन्वभविष्यदिति"।[५]

---

१. कुणालावदान, पृ० २५४।, माकन्दिकावदान, पृ० ४६१।

२. चन्द्रप्रभवोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९७।

३. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५।

४. कुणालावदान, पृ० २४५।

५. माकान्दिकावदान, पृ० ४६०।

सभी भोज्य-पदार्थो के समाप्त हो जाने पर अवशिष्ट एक मानिका (एक तौल विशेष) भक्त भी प्रत्येक बुद्ध को देकर राजा कनकवर्ण अपने गणक, दौवारिक आदि सभी सेवको से अपने-अपने घर जाने के लिए कहता है। इस पर वे कहते हैं—

"यदा देवस्य श्रीसौभाग्यसंपदासीत्, तदा वयं देवेन सार्ध क्रीडता रमता वयं पुनर्वयमिदानीं देव पश्चिमे काले पश्चिमे समये परित्यक्षाम इति"।[1]

किन्तु राजा के पुन: कहने पर वे जाते समय राजा कनकवर्ण को प्रणाम कर कहते हैं—

"क्षन्तव्यं ते यदस्माभिः किंचिदपराद्धम्। अद्यास्माकं देवस्यापश्चिमं दर्शनम्"।[2]

इससे उनकी राजा के प्रति प्रगाढ भक्ति का परिचय प्राप्त होता है, जो विनीत एवं स्वामिभक्त सेवकों की अस्तिता को प्रकट करता है।

पराधीनता की वेडी वस्तुत: वडी विकराल होती है। इसमे मनुष्य को सभी कार्यो को करना पडता है, चाहे वे भले हो या बुरे। उसे आज्ञा का अविलम्ब पालन करना पडता है, हाँ या ना करने का उसे यत्किंचित् भी अधिकार नही। इस त्रासजनक दंष्ट्रा से अवनद्ध मानव अनिष्ट कर्म का ज्ञान होने पर भी विवश हो उस के सपादन में तत्पर होता है, किन्तु एक मर्म भरी मूक-वेदना की टीस उसके अन्तर्मानस को सदैव विलोडित करती रहती है।

दुष्ट अमात्यो द्वारा हिरण्य, सुवर्ण, ग्राम तथा भोगादि प्रदान का प्रलोभन देने पर भी वधक पुरुष, पौर एव जनपदो के अनुरक्त रुद्रायण के वध के लिए तत्पर नही होते। किन्तु उन दुष्ट अमात्यो के चारपालो को यह आज्ञा देने पर कि इन्हे पुत्र, कलत्र, सुहृत्, संवन्धी, वन्धुवर्ग सहित चारक मे वाँध दो, वे भयभीत हो कहते है—

"देव, अलं क्रोधेन। भृत्या वयमाज्ञाकराः। गच्छाम इति।"[3]

---

१. कनकवर्णावदान, पृ० १८३।

२. वही, पृ० १८३।

३ रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।

इस प्रकार वे स्वीकार कर चल देते है। परन्तु उनकी आन्तरिक स्थिति का ज्ञान हमें उस समय होता है, जब वे रुदायण के समीप पहुँच कर कहते हैं—

"वयं ह्यवन्या नृपसंप्रयुक्ता
इहाभ्युपेतास्तव घातनाय ॥"[1]

"दिव्यावदान" मे प्राप्त तत्कालीन अधिकारी एवं सेवक-गण निम्नलिखित थे—

(१) अग्रामात्य[2]—प्रधान मत्री
(२) अमात्य[3]—मंत्री
(३) भाण्डागारिक[4]—भाण्डागार का स्वामी
(४) कोष्ठागारिक[5]—कोष्ठागार का रक्षक
(५) गणक[6]—गणना करने का अधिकारी
(६) यन्त्रकराचार्य[7]—शस्त्रों को सुधारने वाला
(७) शौल्किक[8]—शुल्क ग्रहण करने वाला। शुल्कशाला का अध्यक्ष।
(८) घाण्टिक[9]—घण्टा वजाने वाला·
(९) दौवारिक—[10]द्वारपाल
(१०) प्रेष्यदारिका[11]—नौकरानी
(११) प्रियाख्यायी[12]—प्रिय (शुभ) समाचार देने वाला सेवक

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४८० ।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९७ ।
३. वही, पृ० १९७ ।
४. अशोकावदान, पृ० २७९ ।
५. मेण्ढकावदान, पृ० ८२ ।, माकन्दिकावदान, पृ० ४६२ ।
६. कनकवर्णावदान, पृ० १८१ ।
७. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७ ।
८. ज्योतिष्कावदान, पृ० १७० ।
९. कुणालावदान, पृ० २४५ ।
१०. कनकवर्णावदान, पृ० १८१ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४३९ ।
११. माकन्दिकावदान, पृ० ४६१ ।
१२. वही, पृ० ४५५ ।, कुणालावदान, पृ० ५२४ ।

(१२) अप्रियाख्यायी[1]—अप्रिय (अशुभ) समाचार देने वाला सेवक
(१३) चारपाल[2]—गुप्तचर
(१४) दूत[3]—चर
(१५) वध्यघातक[4] या वधक पुरुष[5]—वध करने वाला (जल्लाद)
(१६) उपस्थायक[6] या उपस्थायिका[7]—सदैव साथ रहने वाला नौकर या नौकरानी।

O

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५५, ४५६।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।
३. वही, पृ० ४६५।
४. पांशुप्रदानावदान, पृ० २३५।, वीतशोकावदान, पृ० २७२।
५. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६।
६. वीतशोकावदान, पृ० २७७।
७. वही, पृ० २७७।

पाँचवाँ अध्याय

धर्म और दर्शन

परिच्छेद १

परिषद् और संघ

चार प्रकार की परिषदे दृष्टिगोचर होती हैं[1]—

(१) भिक्षु परिषत्
(२) भिक्षुणी परिषत्
(३) उपासक परिषत्
(४) उपासिका परिषत्

दो भिक्षु-कर्म कहे गये हैं—(१) ध्यान, और (२) अध्ययन। प्रव्रजित होने के बाद यह पूछे जाने पर कि वह कौन सा कर्म करेगा, महापन्थक दोनों कर्मों को करने के लिए कहता है और दोनो कर्मों का अनुष्ठान करते हुए सर्व क्लेश-प्रहाण हो जाने पर अर्हत्व का साक्षात्कार करता है।[2]

भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओ को मद्य पीने एवं किसी अन्य को देने का निषेध किया था। भगवान् ने भिक्षुओ से कहा था—

"मां भो भिक्षवः शास्तारमुद्दिश्य भवद्भिर्मद्यमपेयमदेयमन्ततः कुशाग्रेणापि"।[3]

भिक्षुओं को चार वस्तुओ की आवन्यकता रहती थी।[4]

(१) चीवर
(२ पिण्डपात

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८५।
२. चूडापक्षावदान, पृ० ४२६।
३ स्वागतावदान, पृ० ११८।
४ सुप्रियावदान, पृ० ५८, ५६।

(३) शयनासन

(४) ग्लानप्रत्ययभैषज्य

बौद्धभिक्षु एव अर्हत् आदि के भिक्षार्थ नगर में प्रविष्ट होने पर समस्त जनकाय उन का दर्शन करने के लिए निकल पडता था। शारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन के भिक्षुओं के पचशत परिवार सहित कोसल मे चारिका-चरण करते हुए श्रावस्ती पहुँचने का समाचार प्राप्त कर सभी नगर निवासी उन के दर्शनार्थ वाहर निकल आते हैं।[1] ऐसे ही भिक्षुओ के पचशत परिवार सहित महापन्थक के चारिकाचरण करते हुए श्रावस्ती पहुँचने पर पुनः महाजनकाय दिदृक्षावश निकल पड़ता है।[2]

भिक्षु, पुरुषो को तथा भिक्षुणियाँ स्त्रियो को धर्म-देशना देती थी। भगवान् ने अन्तःपुर मे भिक्षुओ के प्रवेश का निषेध किया था। अन्तःपुर को धर्मदेशना भिक्षुणियाँ ही देती थी। रुद्रायण के महाकात्यायन से यह कहने पर कि—"मम आर्य सान्तःपुरमिच्छति श्रोतुम्" वह कहते है—"महाराज न भिक्षवोऽन्तःपुरं प्रविश्य धर्मं देशयन्ति। प्रतिक्षिप्तो भगवता अन्तःपुरप्रवेशः"। रुद्रायण के पुनः प्रश्न करने पर—"आर्य, अत्र कोऽन्तःपुरस्य धर्मं देशयति"? वह उत्तर देते है—"महाराज, भिक्षुण्यः"।[3]

जो बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को भोजन कराता था, उसे सहसा ही भोगो की प्राप्ति होती थी। एक गृहपति ऐसा ही श्रवण कर पाँच सौ भिक्षुओं के लिए आहार ले कर जेतवन विहार मे जाता है।[4]

भिक्षुसंघ को भोजन कराने वाले को देव-गति की प्राप्ति होती थी। तदर्थ अनुरक्त चित्त गृहपति पुत्र, बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघ के भोजनार्थ अपनी माता के पास पाँच सौ कार्षापण न प्राप्त कर, भृतिक-कर्म करने को उद्यत होता है।[5]

---

१ चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।

२. वही, पृ० ४२९।

३. रुद्रायणावदान, पृ० ४६९।

४ धर्मरुच्यवदान, पृ० १४७।

५ सहसोद्गतावदान, पृ० १८७—८८।

बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ के भोजन कराने को एक पर्व की संज्ञा दी जाती थी। ज्ञात होता है कि ऐसा पर्व प्रत्युपस्थित होने पर सभी वस्तुएँ उस भोजन कराने वाले के यहाँ चली जाती थी, जिस से मूल्य देने पर भी कोई वस्तु प्राप्त नही होती थी। राजगृह मे ऐसे ही पर्व के प्रत्युपस्थित होने पर जब पाँच सौ वणिक् महासमुद्र से लौट कर राजगृह पहुँचते है तो उन को कोई भी वस्तु प्राप्त नही होती और वे श्रवण-परम्परया अन्वेषण करते हुए गृहपति पुत्र के पास जा उस से उत्सदनधर्मक (भुक्तावशिष्ट) की याचना करते है।[1]

गृहस्थ शिष्य उपासक और उपासिका कहलाते थे। उपासको के लिए चार भद्र आचरणो (शील) का विधान था। वे आचरण इस प्रकार थे।[2]

(१) प्राणातिपात-विरति

(२) अदत्तादान-विरति

(३) काममिथ्याचार-विरति

(४) सुरा-मैरेय-मद्य-प्रमादस्थान-विरति

उपासक होने के लिए त्रिशरण-गमन का विधान था। जो उपासक होना चाहते थे, वे बुद्ध, धर्म और सघ की शरण मे जाते थे। सहसोद्गत गृहपति भगवान् की चतुरार्यसत्यसप्रतिवेधिकी धर्म-देशना का श्रवण कर अपनी कृतार्थता प्रकट करते हुए कहता है—

"........एषोऽह बुद्ध भगवन्तं शरणं गच्छामि धर्म च भिक्षुसंघ च। उपासकं च मां धारय श्रद्याग्रेण यावज्जीव प्राणोपेतमभिप्रसन्नमिति"[3]।

बुद्ध-शरण-गमन, धर्म-शरण-गमन एव सघ-शरण-गमन ये त्रिरत्न कहलाते है।

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १९० ।

२. वही, पृ० १८७ ।

३. वही, पृ० १९२ ।

परिच्छेद २

चारिका, वर्षावास और प्रवारणा

भगवान् बुद्ध धर्म-प्रचार के लिए भिक्षुओं के साथ चारिका (भ्रमण) करते थे। भिक्षुओं के सन्देहों का निराकरण करते थे।[1] सन्देह के लिए दो शब्द प्रयुक्त होते थे—"काङ्क्षा" और 'विमति"।[2] इनमें "काङ्क्षा" वह सन्देह था, जिसमें भिक्षु किसी एक बात का निर्णय नहीं कर पाता था और "विमति" उस सन्देह को कहते थे, जिसमें भिक्षु की बुद्धि बिलकुल न काम करती थी। चारिकाचरण करते हुए बुद्ध गृहस्थों को धर्म का उपदेश भी देते थे।[3]

ये चारिकाएँ कहाँ-कहाँ पर की जाती थीं ? इनका कुछ उल्लेख प्राप्त होता है।[4] जैसे—

(१) अरण्यचारिका
(२) नदीचारिका
(३) पर्वतचारिका
(४) श्मशानचारिका
(५) जनपदचारिका

चारिकाचरण करने से पहले भगवान् बुद्ध आनन्द के द्वारा भिक्षुओं को

---

१. माकन्दिकावदान, पृ० ४५८।
२. कनकवर्णावदान, पृ० १८४।
३. मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ८०-८१।
४. सुप्रियावदान, पृ० ५६।

सूचित कर देते थे कि अमुक दिन अमुक स्थान पर मै चारिकाचरण करूँगा। तुम मे से जो मेरे साथ जाने का इच्छुक हो, वह चीवरादि ग्रहण कर ले।[1]

बुद्ध-चारिका के अठारह लाभ (अनुशंसा) बताये गये है[2]—

(१) अग्निभय का अभाव
(२) उदकभय का अभाव
(३) सिंहभय का अभाव
(४) व्याघ्रभय का अभाव
(५) द्वीपिभय का अभाव
(६) तरक्षु-भय का अभाव
(७) परचक्र भय का अभाव
(८) चौरभय का अभाव
(९) गुल्म-भय का अभाव
(१०) तरपण्य-भय का अभाव
(११) अतियात्रा-भय का अभाव
(१२) मनुष्य-भय का अभाव
(१३) मानवेतरप्राणि-भय का अभाव
(१४) समय-समय पर दिव्य रूप-दर्शन
(१५) दिव्य-शब्द-श्रवण
(१६) उदार-प्रकाश-ज्ञान
(१७) आत्म-व्याकरण-श्रवण
(१८) धर्मसभोग, आमिषसंभोग, अल्पाबाधा

वर्षा-ऋतु मे ये चारिकाये स्थगित कर दी जाती थी। भिक्षुओं को वर्षा-वास का निमत्रण मिलता था। भिक्षु वर्षावास के लिए आमन्त्रित करने वाले को धर्मोपदेश देते थे।[3]

वर्षा के अन्त मे होने वाले उत्सव को प्रवारणा कहते थे।[4] हर पाँचवें वर्ष

---

१ सुप्रियावदान, पृ० ५९।
२. वही, पृ० ५८।
३. वही, पृ० ५८।
४. वही, पृ० ५८,५९।

प्रवारणा का उत्सव विशेष समारोह के साथ मनाया जाता था, इसे "पचवार्षिक" की सज्ञा देते थे। इसमे सर्वस्व-दान तक कर देने का उल्लेख प्राप्त होता है। राजा अशोक पंचवार्षिक करते है। इसमे वह ४००,००० का दान देते है, ३००,००० भिक्षुओ, एक अर्हत् एव दो शैक्षों को भोजन कराते है। महापृथिवी, अन्त:पुर, अमात्यगण, स्वय तथा कुणाल को आर्य संघ के लिए प्रत्यर्पित कर देते हैं।[1]

O

---

१. अशोकावदान, पृ० २७९।

परिच्छेद ३

उपासना

[क] अर्चना

उपासना या अर्चना के लिए इस युग में "कारा"[1] या "पूजा"[2] शब्द प्रचलित था। इस समय भगवान् बुद्ध के केश-नखादि का स्तूप बना कर, पूजा की जाती थी।[3] तथागत की प्रतिमा चित्रित किये जाने का भी उल्लेख है।[4] पूजा पुष्प, धूप, सुगन्धादि सामग्री से की जाती थी।[5] आयुष्मान् पूर्ण अपने दोनों जानुमण्डल को पृथ्वी पर रख, पुष्पो को बिखेर कर धूप जला देते हैं और सौवर्णभृंगार लेकर आराधना करते हैं।[6]

[ख] बुद्धदेव

भगवान् बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। वे ही एक मात्र त्राता थे। "नमो बुद्धाय" का श्रवण कर लोगो की द्वेष-बुद्धि का सर्वथा प्रहाण हो जाता था। वणिको द्वारा एक स्वर से निर्मुक्त "नमो बुद्धाय" नाद का श्रवण कर तिमिंगिल मत्स्य बुभुक्षित होने पर भी उनका भक्षण करना सर्वप्रकारेण अयोग्य समझता है—

"न मम प्रतिरूपं स्यात् यदहं बुद्धस्य भगवतो नामोद्घोषं श्रुत्वा आहारमाहरेयम्"।

---

१. पूर्णावदान, पृ० २६।, धर्मरुच्यवदान, पृ० १५५।

२. रुद्रायणावदान, पृ० ४८६।

३. पूर्णावदान, पृ०, २६।

४ रुद्रायणावदान, पृ० ४६६।

५ धर्मरुच्यवदान, पृ० १५५।

६. पूर्णावदान, पृ० २६।

भक्षण की बात तो दूर रही, वह उन सब के रक्षार्थ स्व-विवृत-वदन का संकोचन मन्द-मन्द गति मे करता है, इस भय मे कि कही सहसा मुख बन्द करने मे सलिल-वेग द्वारा प्रत्याहत हो उनका यान न विनष्ट हो जाय।[1]

बुद्ध-प्रतिमा को देखकर मध्यदेश मे आये हुए वणिको द्वारा मुक्त "नमो बुद्धाय" इस अश्रुत-पूर्व घोष का श्रवण कर राजा रुद्रायण का प्रत्येक रोम प्रफुल्लित हो उठा।[2]

मरण-समय में बुद्ध नामोच्चारण एक मात्र सर्व मगल का आवान करता था। वणिको को विपत्तिग्रस्त देखकर उपासक उन से कहता है—

"भवन्त', नास्माकमस्मान्मरणभयान्मोक्षः कश्चित्। सर्वैरेवास्माभिर्मर्तव्यम्। किं तु सर्व एवैकरवेण नमो बुद्धायेति वदामः। सति मरणे बुद्धावलम्बनया स्मृत्या कालं करिष्यामः। सुगतिगमनं भविष्यति।"

फलस्वरूप वे सब एक स्वर मे "नमो बुद्धाय" का उच्चारण करते है।[3]

अन्य देवताओ की अपेक्षा बुद्ध की प्रमुखता थी। बुद्धो के दर्शनार्थ अन्य देवता उनके पास आते थे। एक बार शक्र, ब्रह्मादि देवता गण रत्नशिखी सम्यक् सबुद्ध के दर्शनार्थ उनके पास गये और उनके चरणो की शिरसा वन्दना कर बैठ गये।[4]

[ग] त्रिशरण-गमन

किसी भी प्रकार की विपत्ति मे, प्राणी त्रिशरण-गमन द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस विधि का अनुष्ठान जीवो के भवितव्य को भी विनष्ट कर देता है। किसी च्यवनधर्मा देवपुत्र के 'आज से सातवे दिन मैं दिव्य-सुख का अनुभव कर राजगृह नामक नगर मे एक सूकरी की कुक्षि मे प्रवेश करूँगा और वहाँ मुझे अनेक वर्षो तक उच्चार-प्रस्राव [मल-मूत्र] का

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४४।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४६७।
३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४३।
४. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।

परिभोग करना पड़ेगा', यह सोचकर अत्यधिक व्यथित हो विलाप करने पर देवेन्द्र शक्र उससे बुद्ध, धर्म एव सघ की शरण जाने के लिए कहते हैं। तदनन्तर,

"एषोऽहं कौशिक बुद्धं शरणं गच्छामि द्विपदानामग्र्यम्, धर्मं शरणं गच्छामि विरागाणामग्र्यम्, संघ शरणं गच्छामि गणानामग्र्यम्'[1]।

ऐसा कहने पर वह मृत्यु को प्राप्त हो तुषित नामक देवनिकाय में उत्पन्न होता है। तुपित नाम के देव गण सर्व काम समृद्ध होते है।

त्रिशरण-गमन के माहात्म्य को देवेन्द्र शक्र इस गाथा द्वारा प्रकट करते हैं—

"ये बुद्धं शरणं यान्ति न ते गच्छन्ति दुर्गतिम्।
प्रहाय मानुषान् कायान् दिव्यान् कायानुपासते॥
ये धर्मं शरणं यान्ति न ते गच्छन्ति दुर्गतिम्।
प्रहाय मानुषान् कायान् दिव्यान् कायानुपासते॥
ये संघ शरणं यान्ति न ते गच्छन्ति दुर्गतिम्।
प्रहाय मानुषान् कायान् दिव्यान् कायानुपासते॥"

भगवान् बुद्ध भी देवेन्द्र शक्र के वचनो का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि बुद्ध, धर्म एवं सघ की शरण मे जाने वाले मानव-देह का परित्याग कर दिव्य-देह धारण करते है।[2]

त्रिशरण-गमन के परिणाम स्वरूप ही दो शुक-शावक चातुर्महाराजकायिक देवों के मध्य उत्पन्न होते है।[3]

[घ] देवता

देवताओ की प्रार्थना करना तत्कालीन धार्मिक जीवन का अभिन्न अग था। अपनी इष्ट-सिद्धि के लिए लोग देवताओ का स्मरण एव स्तवन करते

---

१. सूकरिकावदान, पृ० १२०।
२. सूकरिकावदान, पृ० १२१।
३ शुकपोतकावदान, पृ० १२३।

थे। लोगो द्वारा सन्तानार्थ देवाराधन किए जाने के उदाहरण प्राप्त होते है। निःसन्तान व्यक्ति के चिन्तातुर होने पर उसके सुहृद्-संवन्धी एव बान्धव-गण उसे "देवताराधनं कुरु। पुत्रस्ते भविष्यतीति।" का आश्वासन पूर्ण सन्देश देते थे।[१] सन्तान-प्राप्त्यर्थं उस समय शिव, वरुण, कुवेर, वासवादि तथा अन्य भी कई अनेक देवताओ की उपासना की जाती थी, जैसे आराम-देवता, वन-देवता, चत्वर-देवता, शृ गाटक-देवता और वलिप्रतिग्राहिक-देवता।[२]

धनद-समान रत्नाश्रय होने पर भी मित्र, पुत्र-शोक से व्यथित था। वह प्रचलित लोक-प्रवादानुसार धनद, वरुण, कुवेर, शकर, जनार्दन, पिता-महादि देवता विशेष से पुत्र याचना करता है। रुद्र, चक्रायुध [विष्णु], वज्रधर [इन्द्र], स्रष्टा [ब्रह्मा], मकरध्वज, मयूरासन गिरिसुतापुत्र [षण्मुख], शखदलावदात-सलिला गगा आदि की शरण ग्रहण करता है तथा साथ ही ब्राह्मणो को वहुत सा धन दान देता है।[३]

शिवेतर-क्षय के लिए भी देवाराधन प्रचलित था। विपत्ति से आक्रान्त होने पर जिस मनुष्य की जिस देव मे भक्ति होती थी, वह उससे तत्प्रशमनार्थ याचना करता था। जम्वु-द्वीप लौटने समय तिमिंगि-लोत्पन्न मरण-भय प्रत्युपस्थित होने पर जीवन का कोई अन्य उपाय न देख वणिग्जन शिव, वरुण, कुवेर, महेन्द्र, उपेन्द्रादि देवो से परित्राणार्थ याचना करते है।[४]

एक अन्य स्थल पर, महासमुद्रावतरण करने पर वहाँ उपस्थित महा-कालिकावात के भय से त्रस्त, दारुकर्णी के साथ गये हुए वणिग्-जन अपनी रक्षा के लिए इस प्रकार देवता याचन करते है—

"शिववरुणकुवेरशक्रब्रह्माद्या
सुरमनुजोरगयक्षदानवेन्द्राः।

---

१. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।
२ वही, पृ० २८६।
३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६२-४६३।
४. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४३।

व्यसनमतिभयं वयं प्रपन्नाः
विगतभया हि भवन्तु नोऽद्य नाथाः ॥
केचिन्नमस्यन्ति शचीपति नराः
ब्रह्माणमन्ये हरिशंकरावपि ।
भूम्याश्रितान् वृक्षवनाश्रितांश्च
त्राणार्थिनो वातपिशाचदस्थाः (यक्षाः ?) ॥"[1]

इस प्रकार इन्द्र, वरुणादि वैदिक देवताओ के अतिरिक्त यक्ष, नाग, भूत, पिशाच, वृक्ष, नदी आदि को भी देवता मान कर उनकी पूजा करने की परम्परा थी ।

वैदिक-युग का अत्यन्त प्रभावशाली देवता इन्द्र या शक्र था । यह देवता इस काल में भी वर्तमान था, परन्तु वैदिक-युग का शक्र बहुत ही बलवान् था, जबकि इस काल के शक्र की महिमा मे कुछ कमी न होने पर भी उसका स्थान बुद्धदेव से कम था । एक बार भगवान् लौकिक चित्त उत्पन्न करते है कि देवेन्द्र शक्र तीन सहस्र कार्षापण लेकर आ जाँय । फलतः वे कार्षापणो को लेकर उपस्थित होते है और भगवान् को देकर उनके चरणों की शिरसा वन्दना कर वही अन्तर्हित हो जाते है ।[2] शक्र को देवेन्द्र कहा जाता था, क्योंकि इन्द्र देवताओ का राजा है । इस युग के शक्र को, हम उन्ही कामो मे संलग्न पाते है, जिन कामों मे पुराणो का इन्द्र लगा रहता था, जैसे—तपस्या करने वाले की सत्यता की परीक्षा करना आदि ।

रूपावती के त्याग के गौरव से आकृष्ट हो देवेन्द्र शक्र उसके त्याग-प्रयोजन की परीक्षा लेने आते है । रूपावती कहती हे-त्याग करते समय या त्याग करने के बाद किसी भी प्रकार का क्षोभ या अन्यथाभाव मेरे चित्त मे नही उत्पन्न हुआ । शक्र के यह कहने पर कि इस पर कौन विश्वास करेगा, वह सत्यता का प्रमाण देने के लिए कहती है—

"येन सत्येन ब्रह्मन् सत्यवचनेनोभौ स्तनौ परित्यजामीति परित्यज्यन्त्याः परिज्यज्य वा नाभूच्चित्तस्यान्यथात्वम्, नाभूच्चित्तस्य विप्रत्तिसारः, अपि च

---

१. पूर्णावदान, पृ० २५ ।

२. अशोकवर्णावदान, पृ० ८५ ।

ब्रह्मन् येन सत्येन मया दारकस्यार्थायोभौ स्तनौ परित्यक्तौ, न राज्यार्थं न भोगार्थं न स्वर्गार्थं न शक्रार्थं न राज्ञां चक्रवर्तिनां विषयार्थं नान्यत्राहमनुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबुध्य अदान्तान् दमयेयम् अमुक्तान्, मोचयेयम्, अनाश्वस्तानाश्वासयेयम्, अपरिनिर्वृतान् परिनिर्वापयेयम्, तेन सत्येन सत्यवचनेन स्त्रीन्द्रियमन्तर्धाय पुरुषेन्द्रियं प्रादुर्भवेत् ।''[1]

और ऐसा कहते ही वह एक पुरुष हो जाती हे और उसका नाम रूपावती से रूपावत कुमार हो जाता है।

"नगरावलम्बिकावदान" में देवेन्द्र शक्र यह सोचते हे कि पुण्य और अपुण्य के अप्रत्यक्षदर्शी होने पर भी मनुष्य दान देते हैं और पुण्य करते है, फिर मैं पुण्यो का प्रत्यक्षदर्शी और अपने पुण्य-फल मे स्थित हुआ भी क्यों न दान दूँ और पुण्य करूँ ? और ऐसा विचार कर वह कृपणवीथी मे जा निवास के लिए अपना घर बनाता है। स्वय कुविन्द का वेश और शची, कुविन्द-स्त्री का वेश धारण कर निवास करती है। भिक्षाचरण करते हुए आयुष्मान् महाकाश्यप के पात्र को वह दिव्य सुधा से भर देता था।[2]

तत्कालीन देवताओ मे निम्नलिखित की गणना की गई है—

(१) शिव[3]
(२) वरुण[4]
(३) कुवेर[5]
(४) वासव[6]
(५) धनद[7]
(६) शंकर[8]

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३०६।
२ नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२-५३।
३. कोटिकर्णावदान, पृ० १।, पूर्णावदान, पृ० २५।
४. वही, पृ० १।, वही, पृ० २५।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३।
५. वही, पृ० १।, वही, पृ० २५।, वही, पृ० ४६३।
६. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६।
७. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३।
८ पूर्णावदान, पृ० २५।, मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३।

(७) जनार्दन[1]
(८) पितामह[2]
(९) रुद्र[3]
(१०) चक्रायुध[4]
(११) वज्रधर[5]
(१२) स्रष्टा[6]
(१३) मकरध्वज[7]
(१४) गिरिसुतापुत्र[8]
(१५) गगा[9]
(१६) महेन्द्र[10]
(१७) उपेन्द्र[11]
(१८) शक्र[12]
(१९) आराम-देवता[13]
(२०) वन-देवता[14]
(२१) चत्वर-देवता[15]

---

१. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४९३ ।
२. वही, पृ० ४९३ ।
३. वही, पृ० ४९४ ।
४. वही, पृ० ४९४ ।
५. वही, पृ० ४९४ ।
६. वही, पृ० ४९४ ।
७. वही, पृ० ४९४ ।
८. वही पृ० ४९४ ।
९. वही, पृ० ४९४ ।
१०. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४३ ।
११. वही, पृ० १४३ ।
१२. कोटिकर्णावदान, पृ० १ ।, पूर्णावदान, पृ० २५ ।
१३. वही, पृ० १ ।
१४. वही, पृ० १ ।
१५. सुधनकुमारावदान, पृ० २८६ ।

(२२) शृंगाटक-देवता[1]
(२३) वलिप्रतिग्राहिक-देवता[2]
(२४) ब्रह्मा[3]
(२५) उरग[4]
(२६) यक्ष[5]
(२७) दानवेन्द्र[6]
(२८) वात[7]
(२९) पिशाच[8]

o

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० १।
२. वही, पृ० १।
३. वही, पृ० १।, पूर्णावदान, पृ० २५।
४. पूर्णावदान, पृ० २५।
५. वही, पृ० २५।
६. वही, पृ० २५।
७. वही, पृ० २५।
८. वही, पृ० २५।

परिच्छेद ४

प्रव्रज्या

[क] प्रव्रज्या सर्वसाधारण

भगवान् के सघ मे ऊँच-नीच तथा जाति-पाँति आदि किसी भी प्रकार का भेद-भाव न था। धन-धान्य समृद्ध पुरुषो एव राजा-महाराजाओ से लेकर कृपण तथा क्षुद्र मनुष्यो तक सबके लिए प्रव्रज्या का द्वार खुला था। क्या ब्राह्मण और क्या शूद्र सभी प्रव्रजित किए जाते थे। प्रव्रज्या सर्व-साधारण की वस्तु थी। भगवान् बुद्ध ने मातग-दारिका प्रकृति को प्रव्रजित किया था।[१] समुद्र-यात्रा से लौटे हुए वणिग्-जन माता-पिता, पुत्र, कलत्र, दास-दासी, कर्मकर, मित्र, अमात्य, ज्ञाति-जनादिको मे अपने रत्नों का यथान्याय संविभाग कर प्रव्रज्या-ग्रहण करते है और क्रमशः अर्हत्त्व का साक्षात्कार करते हैं।[२] श्रोण कोटिकर्ण अपने माता-पिता की मृत्यु हो जाने पर समस्त धनराशि को दीन, अनाथ एव कृपणो को दे कर आर्य महाकात्यायन के पास जाता है और प्रव्रज्या- ग्रहण करता है।[३] अनाथपिण्डद गृहपति सार्थवाह पूर्ण के आगमन का प्रयोजन प्रव्रज्या-ग्रहण जान कर अति प्रसन्न हो कहते हैं—

"अहो बुद्धः। अहो धर्मः। अहो संघस्य स्वाख्यातता। यत्रेदानीमीदृशाः प्रधानपुरुषा विस्तीर्णस्वजनबन्धुवर्गमपहाय स्फीतानि च कोशकोष्ठागाराणि आकाङ्क्षति स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावमिति"।[४]

इसी प्रकार अपने पुत्र शिखण्डी को राज्य पर प्रतिष्ठित कर रुद्रायण

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।

२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४४।

३. कोटिकर्णावदान, पृ० ११।

४ पूर्णावदान, पृ० २२।

को प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए आया हुआ देख कर राजा बिम्बिसार भी ऐसा ही विचार प्रकट करते है ।[1]

भगवान् बुद्ध शिष्य के उपहार से बढ़ कर और कोई उपहार नही समझते थे । वह भिक्षुओं से कहते हे—"नास्ति तथागतस्यैवंविधः प्राभृतो यथा विनेयप्राभृतः" ।[2]

[ख] प्रव्रजित होने के नियम

प्रव्रज्या के सर्व साधारणार्थ सुलभ होने पर भी कुछ ऐसे नियम थे, जिन की उपस्थिति, प्रव्रज्या-ग्रहण करने वाले के लिए, अपेक्षित थी । इन नियमो के अभाव मे वह प्रव्रज्या-ग्रहण का अधिकारी नही होता था । ये नियम थे—

(१) सचित कुशल-कर्म
(२) शील सपन्नता
(३) माता-पिता की अनुज्ञा

(१) सचित कुशल-कर्म—पूर्व-जन्म मे सचित यत्किचित् कुशल-कर्म के होने के फलस्वरूप ही कोई व्यक्ति प्रव्रजित हो सकता था । महापन्थक के, पन्थक से प्रव्रज्या-ग्रहण करने के लिए, कहने पर वह कहता है—"अह चूडः परमचूडो धन्वः परमधन्वः । को मा प्रव्राजयिष्यतीति" । तदनन्तर महापन्थक उस के सचित कुशल-मूलो को देख कर उसे प्रव्रजित करते है । उस को उपसपदा ग्रहण कराते है और यह आदेश देते है—

"पापं न कुर्यान्मनसा न वाचा
कायेन वा किंचन सर्वलोके ।
रिक्तः कामैः स्मृतिमान् संप्रजानन्
दुःखं न स विद्यादनर्थोपसंहितम् ।।"[3]

(२) शील-संपन्नता—बुद्ध-शासन—सघ—मे शील-सपन्न व्यक्ति ही प्रव्रज्या-ग्रहण का अधिकारी होता था । शील का सर्वोच्च स्थान था । शील-

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७३ ।
२. वही, पृ० ४७३ ।
३. चूडापक्षावदान, पृ० ४३० ।

रहित व्यक्ति को प्रव्रज्या नही दी जाती थी। अधिष्ठान से निर्वासित कर दिये जाने पर, तीन महापातको—पितृ-वध, मातृ-वध और अर्हद्-वध—को करने वाला श्रेष्ठि-पुत्र, भिक्षु के समीप जा कर प्रव्रज्या-ग्रहण करने के लिए कहता है। तत्कृत पितृ-वध, मातृ-वध एव अर्हद् वध का बोध होने पर भिक्षु उस से कहता है—"एकैकेन एषा कर्मणामाचरणान्न प्रव्रज्यार्हो भवसि, प्रागेव समस्तानाम्। गच्छ वत्स, नाह प्रव्राजयिष्ये"।[1]

(३) माता-पिता की अनुज्ञा—माता-पिता की अनुमति न प्राप्त किये हुए किसी व्यक्ति को भिक्षु प्रव्रजित नही करते थे। धर्मरुचि प्रव्रज्या-ग्रहण करने की इच्छा से जेतवन मे एक भिक्षु के पास जाता है। भिक्षु उससे पूछता है—"मातापितृभ्यामनुज्ञातोऽसि"? वह कहता है—"नाह मातापितृभ्यामनुज्ञातः"। इस पर वह भिक्षु उससे कहता है—"गच्छ वत्स, मातापितृभ्यामनुज्ञा मार्गस्व"। माता-पिता की अनुज्ञा प्राप्त कर लौटने पर वह भिक्षु द्वारा प्रव्रजित कर दिया जाता है।[2] इस प्रकार लोग प्रव्रज्या-ग्रहण करने के पहले अपने माता-पिता या अभिभावक की अनुज्ञा ग्रहण करते थे।[3]

[ग] प्रव्रज्या-विधि

प्रव्रज्या-ग्रहण करने वाले को "एहि भिक्षो"[4] या "एहि भिक्षुणि"[5] द्वारा संबोधित कर उसे ब्रह्मचर्य के पालन करने का आदेश दिया जाता था। इसके अनन्तर ही प्रव्रजित भिक्षु का केश काट दिया जाता था। वह भिक्षु-वस्त्र (सघाटी) धारण करता था और हाथ मे भिक्षा-पात्र ग्रहण कर भिक्षु-वृत्ति (ईर्या-पथ) का आचरण करता था। इस प्रकार एहि भिक्षु (या-भिक्षुणी) वाद द्वारा प्रव्रजित करने की विधि प्रचलित थी।[6]

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १६०।

२. वही, पृ० १४६।

३. कोटिकर्णावदान, पृ० १०। पूर्णावदान, पृ० २१।, वीतशोकावदान, पृ० २७४,

४ पूर्णावदान, पृ० २२।

५ शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।

६ पूर्णावदान, पृ० २२।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।

[घ] प्रव्रज्याकालीन अनुष्ठेय कृत्य

प्रव्रज्या मे ब्रह्मचर्य का प्रमुख स्थान है। प्रव्रज्या में कैसा आचरण करना चाहिए ? गृहपति-पुत्र के द्वारा यह प्रश्न करने पर भिक्षु कहता है—"भद्रमुख, यावज्जीव ब्रह्मचर्यं चर्यते"।[1]

भगवान् के शासन मे प्रव्रजित हो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने से देव-मध्य में स्थिति प्राप्त होती है। चातुर्महाराजिक-देवोपपन्ना चन्द्रप्रभा अपने वहाँ पर स्थित होने के कारण का विचार करती है—"भगवतः शासने ब्रह्मचर्यं चरित्वेति"।[2]

[ङ] प्रव्रज्या-ग्रहण का फल

प्रव्रज्या-ग्रहण करने से मनुष्य कुशल-धर्मों का संचय करता है तथा इस जन्म मे उपार्जित अकुशल-धर्मों का तनूकरण भी होता है एवं गुण-गणों की अधिगति होने पर वह ससरण-चक्र से सर्वथा विनिर्मुक्त हो जाता है।[3]

यदि मनुष्य इस जन्म मे प्रव्रज्या-ग्रहण कर सर्वक्लेश-प्रहाण होने के फल-स्वरूप अर्हत्त्व का साक्षात्कार करता है, तो वही उसके दुःख का सर्वथा अन्त समझा जाता है। इसी तथ्य का उद्घाटन रुद्रायण करता है—

"यदि तावत्प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करोषि, एष एव ते दुःखान्तः"।[4] चन्द्रप्रभा भी कहती है—" ··भगवतोऽन्तिके प्रव्रज। यदि तावद् दृष्टधर्मा सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यसे, स एव तेऽन्तो दुःखस्य"।[5]

[च] प्रव्रज्या के कष्ट

वीतशोक द्वारा प्रव्रज्या-ग्रहण का प्रस्ताव सुनकर अति स्नेहवश राजा अशोक प्रव्रज्या के सामान्य कष्टो का वर्णन करता है—

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८७।
२. रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।
३. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।
४. रुद्रायणावदान, पृ० ४७०।
५. वही, पृ० ४७१।

"प्रव्रज्या खलु वैवर्णिकाभ्युपगतावासः, पांशुकूलं प्रावरणं परिजनोज्झितं, आहारो भैक्ष्यं परकुले, शयनासनं वृक्षमूले तृणसंस्तरः पर्णसंस्तरः, व्याबाधे खल्वपि भैषज्यमसुलभं पूतिमूत्रं च भोजनम्"[1] ।

o

---

१. वीतशोकावदान, पृ० २७५ ।

परिच्छेद ५

मैत्री

मैत्री-भावना चार ब्रह्म-विहारो में से एक है। अन्य ब्रह्म-विहार मुदिता, करुणा, उपेक्षा हैं, जिनका उल्लेख योग-सूत्र मे है।[1] चित्त-विशुद्धि के ये उत्तम साधन हैं। योग के अन्य परिकर्मो की अपेक्षा इनकी यह विशेपता है कि ये परहित के भी साधन है।

जीवो के प्रति स्नेह एवं सुहृद्भाव प्रवर्तन मैत्री है। द्वेषाग्नि के उपशम के लिए मैत्री-भावना है, जिससे शान्ति का अधिगम होता है। मैत्री-भावना की सम्यक्-निष्पत्ति का परिणाम है—द्वेष (व्यापाद) का प्रतिघात।

अनुपमा राजा उदयन को श्यामावती के विरुद्ध उत्तेजित करती है। फलतः राजा उदयन धनुष चढा कर क्रोधपूर्वक श्यामावती के पास जाते हैं। जब कोई स्त्री श्यामावती से कहती है कि राजा पर्यवस्थित हो धनुष लेकर आ रहे है, तो श्यामावती उन सबसे कहती है—"भगिन्यः, सर्वा यूयं मैत्री समापद्यध्वमिति"। श्यामावती प्रमुख पाँच सौ स्त्रियो के मैत्री-समापन्न होने के परिणाम स्वरूप ही राजा उदयन के द्वारा छोडे गये दो बाण व्यर्थ हो जाते है। अन्ततः राजा उदयन श्यामावती पर प्रसन्न होते है और उसे यथेच्छ वर प्रदान करते है।[2]

कुणाल को जब यह ज्ञात होता है कि नेत्र-निष्कासन-कार्य उसकी विमाता तिष्यरक्षिता द्वारा प्रेरित था, तो उसकी किंचिदपि द्वेप-बुद्धि उसके प्रति जागृत नही होती, प्रत्युत् वह उसकी मनोरथ-सिद्धि से प्रसन्न होता है—

---

१ "मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त-प्रसादनम्", समाधिपाद ३३।

२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।

चिरं सुखं चैव सा तिष्यनाम्नी
आयुर्बलं पालयते च देवी ।
संप्रेषितोऽयं हि यया प्रयोगो
यस्यानुभावेन कृतः स्वकार्थः ।।[१]

यह है, मैत्री-भावना की उदात्तता ।

मैत्री-भावना करने वाले की यह कामना होती है कि सभी सत्त्व सुखी हों, सबका कल्याण हो । राजा चन्द्रप्रभ मैत्र्यात्मक, कारुणिक एवं सत्त्ववत्सल थे ।[२] ब्रह्मप्रभ माणवक व्याघ्री के समक्ष आत्म-देह का समर्पण कर मैत्री-विहारी हो जाता है ।[३]

अशोक को तिष्यरक्षिता द्वारा कुणाल के दोनों नेत्र निकलवाये जाने की यथार्थ बात ज्ञात होने पर जब वे उसको अनेक प्रकार के दण्ड देने की बात कहते है, तो उस समय कुणाल उनसे मैत्री-भावना को धारण करने की बात कहता है—

"फलं हि मैत्र्या सदृशं न विद्यते
प्रभोस्तितिक्षा सुगतेन वर्णिता ।"[४]

मैत्री-भावना करने वाला सब दिशाओ को मैत्री-सहगत-चित्त से व्याप्त कर देता है । महाचन्द्र और महीधर दोनो अग्रामात्य, राजा चन्द्रप्रभ के शिरोयाचनक रौद्राक्ष ब्राह्मण के प्रति मैत्र-चित्त उत्पन्न कर अपने ऐहिक शरीर का परित्याग कर देते है ।[५]

O

---

१. कुणालावदान, पृ० २६६ ।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १९७,१९८,२०० ।
३. रूपावत्यवदान, पृ० ३११ ।
४ कुणालावदान, पृ० २७० ।
५. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०१ ।

परिच्छेद ६

दान

दान देने की प्रवृत्ति लौकिक और पारलौकिक कल्याण का साधन मानी जाती थी। याचक को मुँहमाँगी वस्तु-प्रदान कर, उसका मनोरथ पूरा करना, दान का सर्वोच्च आदर्श था। नगरनिवासिनी देवता के द्वारा रौद्राक्ष ब्राह्मण को शिर न प्रदान करने की प्रार्थना किए जाने पर, सर्व परित्यागी एव सर्वजन-मनोरथ-परिपूरक राजा चन्द्रप्रभ कहते हैं—'गच्छ देवते यद्यागमिष्यति, अहमस्य दीर्घकालाभिलषितं मनोरथं परिपूरयिष्यामीति"। राजा चन्द्रप्रभ के दान की चरमावस्था वहाँ निखर उठती है, जब रौद्राक्ष ब्राह्मण उनसे शिर की याचना करता है और वे प्रसन्न हो कहते है—"हन्तेद ब्राह्मण शिरोऽविघ्नतः साधु प्रगृह्यतामुत्तमाङ्गमिति"।[1]

राजा चन्द्रप्रभ के द्वारा रौद्राक्ष ब्राह्मण का मनोरथ पूरा किया जाना, महाभारत मे सूर्यदेव के समझाने पर भी महादानी कर्ण के द्वारा ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को कवच-कुण्डल प्रदान करने की कथा का स्मरण दिलाता है।[2]

सार्थवाह मित्र अपने जीवन को "प्रहतार्णवोर्मिचपल" मानता है तथा अर्थ (धन) के प्रति उसकी मान्यता "वातावातप्रनृत्तप्रवरनरवधूनेत्रपक्ष्माग्रलोल" है। अतः, वह कारुण्यवश अनाथ, कृपण, क्लीव एव आतुरो को प्रभूत मात्रा मे धन प्रदान करता है।[3]

राजा अपनी सर्व सम्पत्ति का दान धर्म एव संघ के लिए कर अर्धामलकेश्वर हो जाता था। राजा अशोक ८४००० धर्म-राजिका की

---

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०१।

२. वनपर्व

३. मैत्रकन्यकावदान, पृ० ४६३।

स्थापना करते है और बुद्ध की जाति, बोधि, धर्म-चक्र एवं परिनिर्वाण में सर्वत्र १००,००० का दान करते है। पंचवार्षिक करते हैं, जिसमें ४००, ००० का दान देते हैं। महा-पृथ्वी, अन्तःपुर, अमात्यगण, स्वयं तथा कुणाल को आर्य-सघ के लिए प्रत्यर्पित कर देते हे। इस प्रकार दान देते-देते जब वे केवल अर्धामलकेश्वर रह जाते है, तो उस अर्धामलक को भी संघ के लिए प्रदान कर देते है।[1]

ऐसे राजाओ का वर्णन भी प्राप्त होता है, जो यज्ञादि कर्म करते थे और तदुपरान्त दान देते थे। राजा वासव बारह वर्षो तक यज्ञ करता है और यज्ञ के समाप्त होने पर पॉच महाप्रदान करता है। वे पाँच महाप्रदान क्रमशः ये थे[2] —

[१] सौवर्णक दण्डकमण्डलु,
[२] सौवर्णा सपात्री
[३] चतूरत्नमयी शय्या
[४] पचशत कार्पापण
[५] सर्वालकार-विभूषिता कन्या

इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि चित्र-विचित्र वस्त्रालंकरणों से सुसज्जिता कन्या का दान श्रेष्ठ समझा जाता था। इसकी गणना महाप्रदानो मे की गई है।

दान मे सुवर्ण-मण्डित श्रृंगो वाली गाये भी दी जाती थी। राजा चन्द्रप्रभ ने अन्न, पान, माल्य, विलेपन, वस्त्र, शयन, आसन, छत्र, रथ, अलंकार आदि के साथ ही साथ सुवर्ण-श्रृंगों वाली गायो का भी दान दिया था।[3]

अमात्यो की प्रार्थना पर राजा अभय-दान भी प्रदान करता था। राजा अशोक आमात्यो की प्रार्थना पर अपने आदेश से लोगो को निर्मुक्त कर अभय प्रदान करता है।[4]

---

१. अशोकावदान, पृ० २७६-२८०।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।
३ चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० १६६।
४. वीतशोकावदान, पृ० २७८।

"दानाधिकरणमहायानसूत्र"[1] मे भगवान् ने भिक्षुओं से ३७ प्रकार के दान का वर्णन किया है, जिसका आश्रयण श्रावक किसी स्थिति विशेष की प्राप्ति के लिए करता है।

चाहे जितनी उर्वरा भूमि क्यो न हो, किन्तु ऐसा नही हो सकता कि जिस दिन व्यक्ति वीज-वपन करे, उसी दिन उस को फल की प्राप्ति भी हो जाय। प्रत्येक वस्तु के फलीभूत होने मे समय की अपेक्षा होती है। किन्तु प्रत्येक बुद्ध को पिण्डपात देने का फल इतनी शीघ्र प्रादुर्भूत हो जाता है कि गृहपति-परिवार का सर्व मनोरथ उसी दिन पूर्ण हो गया। यह समाचार ज्ञात होने पर राजा ब्रह्मदत्त इस की महत्ता प्रकट करता है—

"अहो गुणमयं क्षेत्रं सर्वदोषविवर्जितम्।
यत्रोप्तं वीजमद्यैव अद्यैव फलदायकम्॥"[2]

दान का पुण्य दो प्रकार का है—वह पुण्य जो त्याग-मात्र से ही प्रसूत होता है (त्यागान्वय-पुण्य) और वह पुण्य जो प्रतिग्रहीता द्वारा दान-वस्तु के परिभोग से संभूत होता है (परिभोगान्वय-पुण्य)[3]। ब्राह्मणदारिका के सक्तु-भिक्षा प्रदान करने पर भगवान् बुद्ध उस कुशल-मूल से उस का तेरह कल्पो तक विनिपात न होने तथा अन्त मे प्रत्येक-बोधि का व्याकरण करते हैं।[4] यह त्यागान्वय-पुण्य का उदाहरण है।

एक मानिका मात्र भक्त शेष रह जाने पर भोजनार्थ आगत प्रत्येक बुद्ध को देख राजा कनकवर्ण उस अवशिष्ट मानिका भक्त को सहर्ष उन को समर्पित कर देते है। भगवान् प्रत्येक-बुद्ध उस पिण्ड-पात को खाते हैं और उसी क्षण विविध प्रकार के खादनीय भोजनीय पदार्थो तथा रत्नो की वृष्टि होने लगती है।[5] यह परिभोगान्वय पुण्य का उदाहरण है।

दान देते समय दाता के मन मे जैसी भी भावना होती है, तदनुरूप ही वह तदुत्थित फल का अधिगम करता है।[6]

---

१ दानाधिकरणमहायानसूत्र, पृ० ४२६।
२. मेण्ढकावदान, पृ० ८४।
३. "बौद्ध धर्म दर्शन"—आचार्य नरेन्द्र देव, पृ० २५५।
४ ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४३।
५ कनकवर्णावदान, पृ० १८३-१८४।
६ मेण्ढकावदान, पृ० ८३।, कनकवर्णावदान, पृ० १८३।

कुशल धर्म के अनुष्ठान में किंचिदपि प्रमाद अपेक्षित नही । रौद्राक्ष ब्राह्मण को शिर प्रदान करने के लिए मणिरत्नगर्भ उद्यान मे जाते समय सहस्रों प्राणी राजा चन्द्रप्रभ के पीछे-पीछे जाते है। किन्तु वह अपने प्रजा-जनो को "अप्रमादः करणीयः कुशलेपु धर्मेष्विति" इस सन्देश द्वारा ही आश्वासन देता है।[1] वस्तुतः यही मानव के लिए चिरन्तन आर्य-सन्देश है, जिस की अक्षय ज्योति वैदिक-काल से प्रारम्भ हो कर रामायण, महाभारत काल से होते हुए बौद्ध-काल तक आई और अपने अक्षुण्ण पावन प्रकाश से समस्त मानव-जगत के कर्म-पथ को प्रदीप्त करती रही।

O

१. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान पृ० २०१।

परिच्छेद ७

सत्य-क्रिया

सत्य-क्रिया मे अत्यधिक विश्वास था। इस के द्वारा विशुद्ध पुरुष अपनी विशुद्धि का प्रख्यापन करता था। "त्याग करते समय या त्याग करने के बाद किसी भी प्रकार का अन्यथाभाव मेरे चित्त मे नही हुआ," इस सत्यता का प्रमाण रूपावती देवेन्द्र शक्र को देती हुई कहती है, "हे ब्रह्मन्, मैंने केवल दारक के रक्षार्थ अपने दोनो स्तनो का परित्याग किया है, न कि राज्यार्थ, भोगार्थ, स्वर्गार्थ, शक्रार्थ या चक्रवर्ती राजाओ के विषयार्थ। इस का एक मात्र प्रयोजन तो यह है कि मैं अनुत्तर-सम्यक्-सम्बोधि प्राप्त कर अदान्तो को आत्म-निग्रहार्थ प्रेरित करूँ, बन्धन-युक्त मनुष्यों को निर्मुक्त करूँ, अनाश्वस्तो को आश्वस्त करूँ एव उद्विग्नो को सुखी करूँ। इस सत्य-क्रिया (सत्य-वचन) से मेरी स्त्रीन्द्रिय का अन्तर्धान हो कर पुरुषेन्द्रिय प्रकट हो जाय"। यह कहते ही उस की स्त्रीन्द्रिय अन्तर्हित हो कर पुरुषेन्द्रिय प्रादुर्भूत हो जाती है।[1]

कुणाल राजा अशोक से कहता है कि माता के प्रति उस का कभी दुष्ट चित्त नही हुआ। तीव्र अपकार करने पर भी उस को क्रोध नही और न दु:ख का लेश।

> राजन्न मे दुःखमलोऽस्ति कश्चि—
> तीव्रापकारेऽपि न मन्युतापः।
> मनः प्रसन्नं यदि मे जनन्यां
> येनोद्धृते मे नयने स्वयं हि।
> तत्तेन सत्येन ममास्तु ताव—
> न्नेत्रद्वयं प्राक्तनमेव सद्यः॥"[2]

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३०६।

२. कुणालावदान, पृ० २७०।

इस सत्य-क्रिया से उसे पूर्वाधिक सुन्दर नेत्र-युगम प्रादुर्भूत हो जाते हैं।

अपने स्वामी के द्वारा किये गये सत्य-वचन के प्रभाव से ही रूपावती के दोनों स्तन पूर्ववत् प्रादुर्भूत हो जाते है।[1]

ये सब बाते आज के युग मे भले ही निरी कल्पना सी प्रतीत हों, परन्तु इन से उस समय के लोगो की इस में अटूट आस्था प्रकट होती है।

O

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३०८।

परिच्छेद ८

षट् पारमिता

महायान के अनुसार बुद्धत्व के साधक को षट्-पारमिताओं का ग्रहण करना चाहिए। पारमिता का अर्थ है – पूर्णता। दानादि गुणों मे पूर्णता प्राप्त योगी को, दानादि पारमिता पारंगत कहते है। षट्-पारमिताओं मे इन की गणना की गई है[1]—

(१) दान-पारमिता
(२) शील-पारमिता
(३) क्षान्ति-पारमिता
(४) वीर्य-पारमिता
(५) ध्यान-पारमिता
(६) प्रज्ञा-पारमिता

यही बोधिसत्त्व-शिक्षा है और इसी को बोधिचर्या कहते है।

(१) **दान-पारमिता** – सर्व वस्तुओं का सब जीवों के लिए दान कर अन्त मे दान-फल का भी परित्याग कर देना "दानपारमिता" है। इस मे बोधिसत्त्व आत्मभाव का भी त्याग कर देता है। राजा चन्द्रप्रभ सर्वपरित्यागी था। रौद्राक्ष ब्राह्मण के द्वारा शिर की याचना किये जाने पर वह सहर्ष उस से कहता है—

"हन्तेदं ब्राह्मण शिरोऽविघ्नतः साधु प्रगृह्यतामुत्तमाङ्गमिति।"[2]

(२) **शील-पारमिता**—विरति-चित्तता की गणना शील मे की गई है। अतः प्राणातिपातादि सर्व गर्हित कार्यों से चित्त का विरमण ही शील-पारमिता है।

---

१. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
२. चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २००-२०१।

(३) क्षान्ति-पारमिता—परापकार की अवस्था में भी चित्त का शान्त रहना—दौर्मनस्य का अनुद्भव या चित्त की अकोपनता का ही नाम क्षान्ति-पारमिता है। अत्यन्त अनिष्ट का आगमन होने पर भी दौर्मनस्य की प्रतिपक्ष-भूता मुदिता का सयत्न आश्रयण ही इस के अधिगम का एकमात्र उपाय है। इस सवन्ध मे हमे पूर्ण की कथा प्राप्त होती है। भगवान् बुद्ध ने सक्षिप्त अववाद की देशना के अनन्तर पूर्ण से पूछा कि तुम कहाँ विहार करना चाहते हो ? पूर्ण ने उत्तर दिया—श्रोणापरान्तक जनपद मे। भगवान् ने कहा—किन्तु वहाँ के लोग चण्ड स्वभाव के और परुपवाची है। यदि वे लोग तुम पर आक्रोश करें, तुम्हारा अपवाद करें, तो तुम क्या सोचोगे ? पूर्ण ने कहा—मैं सोचूँगा कि वे लोग भद्र है, जो मुझे हाथ से या ढेले से नही मारते ; केवल परुप वचन कहते हैं। बुद्ध ने पुनः प्रश्न किया—यदि वे हाथ से या ढेले से मारे, तो क्या सोचोगे ? पूर्ण ने कहा—मैं सोचूँगा कि वे लोग भद्र है, जो मुझे हाथ से या ढेले से ही मारते है, दंड या किसी शस्त्र से नही मारते। बुद्ध ने फिर पूछा—यदि वे दण्ड या शस्त्र से मारे ? पूर्ण ने कहा—तव मैं सोचूँगा कि वे भद्र पुरुप और स्नेही है, जो मेरे प्राण नही हर लेते। बुद्ध ने पुनः जानना चाहा और यदि वे प्राण हर ले ? पूर्ण ने कहा—तव मैं सोचूँगा, वे भद्र एव स्नेही पुरुष है, जो मुझे इस दुर्गन्धपूर्ण शरीर (पूतिकाय) से अनायास ही मुक्त कर रहे है। पूर्ण से यह सुन कर भगवान् ने कहा—

"साधु साधु पूर्ण, शक्यस्त्वं पूर्ण अनेन क्षान्तिसौरभ्येन समन्वागतः श्रोणापरान्तकेषु जनपदेषु वस्तुं श्रोणापरान्तकेषु वास कल्पयितुम्। गच्छ त्वं पूर्ण, मुक्तो मोचय, तीर्णस्तारय, आश्वस्त आश्वासय, परिनिर्वृतः परिनिर्वापयेति"।[1]

इसी प्रकार कुणाल भी दूसरे के द्वारा किये गये अपकार का शान्तभाव से सहन करते हैं, और उसके प्रति कोई प्रत्यपकार-बुद्धि नही उत्पन्न होने देते। जव उनको नेत्र-निष्कासन कार्य तिष्यरक्षिता-प्रयुक्त होने का ज्ञान होता है, तव वह प्रमुदित चित्त हो कहते है—

"चिरं सुख चैव सा तिष्यनाम्नी
आयुर्बल पालयते च देवी।

---

१. पूर्णावदान, पृ० २३-२४।

सम्प्रेषितोऽयं हि यया प्रयोगो
यस्यानुभावेन कृतः स्वकार्यः ॥"[१]

राजा अशोक जब तिष्यरक्षिता को अनेक प्रकार के दंड देने की बात सोचते है, तब भी कुणाल तिष्यरक्षिता के प्रति अपने चित्त मे किंचिदपि दौर्मनस्य का लेश तक न होने का प्रमाण देता है—

"राजन्न मे दुःखमलोऽस्ति कश्चि--
तीव्रापकारेऽपि न मन्युतापः ।
मनः प्रसन्नं यदि मे जनन्यां
येनोद्धृते मे नयने स्वयं हि ।
तत्तेन सत्येन ममास्तु ताव-
न्नेत्रद्वयं प्राक्तनमेव सद्यः ॥"[२]

(४) वीर्य-पारमिता

कुशल कर्म में उत्साह का होना, वीर्य-पारमिता है। संसार-दुःख का तीव्र अनुभव होने पर ही कुशल कर्म मे प्रवृत्ति होती है। रत्नशिखी जीर्ण, आतुर (रुग्ण) और मृत व्यक्ति को देख, ससार की अनित्यता समझ कर वन का आश्रयण करता है। और जिस दिन वन का आश्रयण करता है उसी दिन अनुत्तर ज्ञान का अधिगम कर लेता है।[३] उपगुप्त जब वासवदत्ता गणिका को इस अशुचि शरीर का ज्ञान कराते है, तब उसे कामधातु में वैराग्य उत्पन्न होता है और वह बुद्ध, धर्म और सघ का शरण ग्रहण करती हे।[४]

रूपावती स्याम, वल और वीर्य का आश्रय कर अपने दोनों स्तनो को शस्त्र द्वारा काट कर दारक के रक्षार्थ स्त्री को अर्पित कर देती है।[५]

---

१. कुणालावदान, पृ० २६६।
२. वही, पृ० २७०।
३. मैत्रेयावदान, पृ० ३८।
४. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२०-२२१।
५. रूपावत्यवदान, पृ० ३०८।

परिच्छेद १०

सांप्रदायिक झगड़े

तत्कालीन अन्य समसामयिक साम्प्रदायिक-सस्थाओ का बौद्धो से विरोध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। एक समय भगवान् राजगृह मे विहार कर रहे थे। उस समय पूर्ण-काश्यप, मस्करी गोशालीपुत्र, संजयी वैरट्टीपुत्र, अजित केशकम्बल, ककुद कात्यायन और निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र—ये ६ तीर्थिक राजगृह की कुतूहलशाला मे एकत्र हो कहने लगे कि जब श्रमण गौतम का लोक मे उत्पाद नही हुआ था तब राजा, ब्राह्मण, गृहपति, नैगम, जानपद, श्रेष्ठी एव सार्थवाह सभी हम लोगो का आदर-सत्कार करते थे। किन्तु जबसे श्रमण गौतम का लोक मे उत्पाद हुआ है तबसे हम लोगो का लाभ-सत्कार सर्वथा समुच्छिन्न हो गया है। हम लोग ऋद्धिमान् और ज्ञानवादी है। श्रमण गौतम भी अपने को ऐसा समझते हैं। उनको चाहिए कि हमारे साथ ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखलावे। जितने ऋद्धि-प्रातिहार्य वह दिखलायेंगे, उसके दुगुने हम दिखलायेंगे।[1]

श्रावस्ती मे, भगवान् के महाप्रातिहार्य दिखलाने से भग्न-मनोरथ तीर्थिकों मे से कुछ भद्रंकर नगर मे जाकर रहने लगे थे। भगवान् के उस नगर में आने का समाचार सुनकर वे पुन. व्यथित हो परस्पर कहते हैं—पहले हम लोग श्रमण गौतम के द्वारा मध्यदेश से निकाले गये और अब यदि वह यहाँ आयेंगे, तो निश्चय ही यहाँ से भी निकाल दिये जायँगे। इसलिये कोई उपाय करना चाहिये। ऐसा विचार कर वे कुलोपकरणशाला मे जाकर "धर्मलाभ हो" "धर्मलाभ हो" चिल्लाते हैं और कहते है कि हम लोगो ने तुम सबकी संपत्ति देखी है, विपत्ति नही देख सकते। श्रमण गौतम वज्र गिराता हुआ और बहुतों को बिना पुत्र और बिना पति का करता हुआ आ रहा है। यह सुन जब वे उन तीर्थिको से वहाँ रहने के लिए कहते है, तो वे कहते हैं—

---

१. प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ८९।

"भद्रंकरसामन्तकेन सर्वजनकायमुद्वास्य भद्रंकरं नगरं प्रवासयत। शाद्वलानि कृषत। स्थण्डिलानि पातयत। पुष्पफलवृक्ष छेदयत। पानीयानि विषेण दूषयत"।

तीर्थिक इस शर्त पर वहाँ रहने को तैयार होते हैं—

"न केनचिच्छ्रमणं गौतमं दर्शनायोपसंक्रमितव्यम्। य उपसङ्क्रामति, स षष्टिकार्षापणो दण्ड्य इति"।[1]

तीर्थिकों का कहना था कि श्रमण शाक्यपुत्रीयो को मोक्ष नही प्राप्त हो सकता। उनकी मान्यता थी—

"भुक्त्वान्नं सघृतं प्रभूतपिशित दध्युत्तमालकृत
शाक्येष्विन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यः प्लवेत्सागरे।"[2]

एक समय जब भगवान् बुद्ध राजगृह मे भिक्षाचरण करने रहते है, तब सुभद्र गृहपति उनको देख अपनी आपन्नसत्त्वा पत्नी को लेकर भगवान् के पास पहुँचता है और उनसे पूछता है—"भगवन् इय मे पत्नी आपन्नसत्त्वा सवृत्ता। कि जनयिष्यतीति ?" भगवान् उत्तर देते है—"गृहपते, पुत्र जनयिष्यति, कुलमुद्योतयिष्यति, दिव्यमानुषी श्रिय प्रत्यनुभविष्यति, मम शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्व साक्षात्करिष्यति।"

यह समाचार ज्ञात होने पर भूरिक सोचता है कि हम लोगो का एक ही भिक्षा-कुल है, उसको भी श्रमण गौतम अपने अनुकूल करना चाहते है। वह गौतमोक्त बातो की गणना करने पर जब उन्हे यथार्थ पाता है तो सोचता है कि यदि मैं गौतमोक्त बातो का अनुमोदन करता हूँ तो गृहपति की गौतम के प्रति श्रद्धा हो जायगी। अतः वह हाथो को परिवर्तित कर एव मुख का निरीक्षण कर कहता है, "गृहपति, इसमे कुछ सत्य है और कुछ झूठ।" गृहपति के यह पूछने पर कि इसमे क्या सत्य और क्या मृषा है, वह कहता है—"गृहपति, यह जो बतलाया कि पुत्र को उत्पन्न करेगी। यह सत्य है। कुल को उद्योतित करेगा, यह भी सत्य है। इसे अग्रज्योति कहते है। क्योकि यह सत्त्व मन्दभाग्य है, जो उत्पन्न होते ही अग्नि से कुल को जला देगा। यह

---

१ मेण्ढकगृहपतिविभूतिपरिच्छेद, पृ० ७८-७९।
२. वीतशोकावदान, पृ० २७२।

कहना कि दिव्यमानुषी श्री का अनुभव करेगा, यह मृषा है। गृहपति, क्या तुमने किसी मनुष्य को दिव्य-मानुषी श्री का अनुभव करते देखा है? यह जो बतलाया कि मेरे शासन मे प्रव्रजित होगा, यह सत्य है। भला जब 'इसके पास न भोजन होगा और न वस्त्र तो निश्चय ही श्रमण गौतम के पास प्रव्रज्या-ग्रहण करेगा। सर्व क्लेश-प्रहाण हो जाने से अर्हत्त्व का साक्षात्कार करेगा, यह मृषा है। जब श्रमण गौतम को ही सर्व क्लेश-प्रहाण होने से अर्हत्त्व की प्राप्ति नही हुई, तो भला इसको कहाँ से होगी" ?[1]

उक्त वाक्यो मे, जिन बातो की अयथार्थता प्रकट की गयी है, उनके समर्थन मे उपस्थित किए गये तर्क गौतम के प्रति स्पष्ट रूप से द्वेप-बुद्धि के परिचायक है। इतना ही नही भूरिक द्वारा ऐसा कहे जाने पर जब सुभद्र अपनी पत्नी को मार डालता है, तब यह ज्ञात होने पर निर्ग्रन्थक हृष्ट-पुष्ट प्रमुदित हो राजगृह की रथ्या, वीथी, चत्वर, शृ गाटकादिको मे चारो तरफ घूम-घूम कर कहते है—

"शृण्वन्तु भवन्तः। श्रमणेन गौतमेन सुभद्रस्य गृहपतेः पत्नी व्याकृता—पुत्रं जनयिष्यति, कुलमुद्योतयिष्यति, दिव्यमानुषीश्रिय प्रत्यनुभविष्यति, मम शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यति। सा च कालगता शीतवनश्मशानमभिनिर्हृता। यस्य तावद्वृक्षमूलमेव नास्ति, कुतस्तस्य शाखापत्रफल भविष्यतीति" ?[2]

---

१. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६२।
२ वही, पृ० १६३।

परिच्छेद ११

नरक

निम्न प्रकार के नरकों का उल्लेख किया गया है[1]—

(१) संजीव

(२) कालासूत्र

(३) संघात

(४) रौरव

(५) महारौरव

(६) तपन

(७) प्रतापन

(८) अवीचि

(९) अर्बुद

(१०) निरर्बुद

(११) अटट

(१२) हहव

(१३) हुहुव

(१४) उत्पल

(१५) पद्म

(१६) महापद्म

---

१. ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४१। अशोकवर्णावदान, पृ० ८६। रुद्रायणावदान, पृ० ४८१।

ये नरक दो प्रकार के है—

(१) उष्ण-नरक

(२) शीत-नरक

इनमे सजीव, कालसूत्र, सघात, रौरव, महारौरव, तपन, प्रतापन और अवीचि ये आठ उष्ण-नरक तथा अर्बुद, निरर्बुद, अटट, हहव, हूहुव, उत्पल, पद्म और महापद्म ये आठ शीत-नरक है।

O

परिच्छेद १२

तीन यान

"दिव्यावदान" में मुमुक्षुओं के तीन यान प्रधान रूप से प्रचलित थे।

(१) श्रावक- यान
(२) प्रत्येक बुद्ध-यान
(३) अनुत्तर-सम्यक्-सवोधि या बोधिसत्त्व-यान

(१) श्रावक-यान

श्रावको मे ज्ञानोदय बुद्धादि की देशना के अनन्तर होता था। अतः उन के ज्ञान को औपदेशिक कहते थे। श्रावक पृथग्जन से उत्कृष्ट होते थे; क्योंकि पृथग्जन त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की सिद्धि मे संलग्न रहते थे, जबकि श्रावक इन से सर्वथा विमुख। श्रावक केवल अपने ही मोक्ष के उपाय-चिन्तन मे रत रहता है, परहित साधन उस का लक्ष्य नही।

(२) प्रत्येक बुद्ध-यान

इन का ज्ञान अनौपदेशिक या प्रातिभ होता है। ये पूर्व संस्कारो के परिणाम स्वरूप स्वत. ही बोधि-लाभ करते है। प्रत्येक-बुद्ध भी केवल अपने ही बुद्धत्त्व प्राप्ति की चेष्टा करते है और उसे वे वस्तुतः प्राप्त भी करते हैं, किन्तु सर्व प्राणियो के बुद्धत्त्व-प्राप्ति मे उन का भी कोई प्रयास नही। जिस समय बुद्ध का उत्पाद नही हुआ रहता, उस समय संसार के हीन-दीनो पर अनुकम्पा करने वाले प्रत्येक-बुद्ध का प्रादुर्भाव लोक मे होता है। प्रत्येक-बुद्ध की धर्म-देशना कायिकी होती है, वाचिकी नही। वे अपने अधिगत ज्ञान-बल से, बिना शब्दोच्चारण के ही प्राणियो को कुशलानुष्ठान के प्रति प्रेरित करते है। इन की ऋद्धि शीघ्र ही "पृथग्जना-वर्जनकरी" होती है।[1]

---

१. मेण्ढकावदान, पृ०८२, ८३।, सहसोद्गतावदान, पृ० १९३।

(३) अनुत्तर-सम्यक्-संबोधि या बोधिसत्त्व-यान

बोधिसत्त्व का आदर्श, स्वदुःख-निवृत्ति न हो कर निरन्तर पर-सेवा-निरत रहना है। वह सब जीवों को दुःख से विमुक्त करना चाहता है। बोधिसत्त्व संसार के प्राणियों के निस्तार के लिए अपने निर्वाण तक की कामना नही करता। वह सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति केवल अपने लिए नही करता, अपितु अनेक प्राणियो को क्लेश-बन्धनों से निर्मुक्त करने के लिए। ऐसी अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं, जिन मे पारमिताओ की भावना के लिए उपासक अपने जीवन का भी उत्सर्ग कर देता है। उस का प्रयोजन ऐहिक या पारलौकिक सुख न हो कर, अनुत्तर-सम्यक्-संबोधि का अधिगम होता है; जिस मे वह अदान्तो को आत्म-निग्रहार्थ प्रेरित कर सके, बन्धन युक्त मनुष्यों को निर्मुक्त कर सके, अनाश्वस्तो को आश्वस्त कर सके एवं उद्विग्नों को सुखी कर सके।[1]

पूर्ण के रूप मे हमे एक ऐसे भिक्षु का साक्षात्कार होता है जो धर्म-प्रचार को सब से अधिक महत्व देता है। पूर्ण का आदर्श बोधिसत्त्व है। वह क्षान्ति-पारमिता से समन्वागत है। जब वह श्रोणापरान्तक में उपदेश के लिए जाता है, तब एक लुब्धक जो मृगया के लिए जा रहा था, इस मुण्डित भिक्षु को देख कर, उसे अपशकुन समझता है और उसे धनुष चढा कर मारने दौडता है। पूर्ण ने उस से कहा, तुम मुझे मारो, मृग का वध मत करो।[2]

o

---

१ चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्यावदान, पृ० २०२।, रूपावत्यवदान, पृ० ३०६, ३१२।

२. पूर्णावदान, पृ० २४।

परिच्छेद १३

धर्म-देशना

धर्म-देशना मूलतः दो प्रकार की थी--

(१) दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, विषयस्थ - दोषो की कथा (कामेष्वादीनव), काम-विषयों से निःसरण, विष्य-भय एवं संक्लेशव्यवदान की कथा द्वारा धर्म-देशना ।

(२) सामुत्कर्षिकी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेविकी धर्म-देशना ।

दूसरी सामुत्कर्षिकी धर्म-देशना, जिस मे चतुरार्य-सत्य का उपदेश रहता है, वह भिक्षु होने योग्य व्यक्ति को ही दी जाती थी, जिस की शेमुषी, प्रथम कोटि की धर्म-कथाओ की देशना द्वारा प्राजल, विदग्ध एव निर्मल हो चुकती थी । भगवान् बुद्ध प्रकृति को पहले प्रथम कोटि की देशना द्वारा समुत्तेजित, सप्रहर्षित, विनीवरण चित्त एवं ऋजु चित्त वाली कर लेते हैं ! तदनन्तर जब वह सर्व-प्रकारेण योग्य हो जाती है, तब उसे सामुत्कर्षिकी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्म-देशना करते है ।[1]

चार आर्य-सत्य हैं—

(१) दुःख

(२) दुःख-हेतु (समुदय)

(३) दु.ख-निरोध

(४) दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपत्ति (मार्ग)

पातंजल योग-सूत्र मे मोक्ष-शास्त्र को चिकित्सा-शास्त्र के समान चतुर्व्यूह बतलाया गया है । जिस प्रकार रोग, रोग का कारण, आरोग्य

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७ ।

और औषध ये चार चिकित्सा-शास्त्र के प्रतिपाद्य है उसी प्रकार हेय, हेय-हेतु, हान और हानोपाय ये चार मोक्ष-शास्त्र के प्रतिपाद्य है।[1]

भगवान् की देशना मे प्रतीत्य-समुत्पाद का भी ऊँचा स्थान है। प्रतीत्य-समुत्पाद का अर्थ है, हेतु-फल परम्परा। अर्थात् इस के होने पर (इस हेतु या प्रत्यय से) यह होता है; इस की उत्पत्ति से, उस की उत्पत्ति होती है। इसके न होने पर, वह नही होता; इसके निरोध से, उस का निरोध होता है। इस प्रतीत्य-समुत्पाद के बारह अग है—

(१) अविद्या
(२) सस्कार
(३) विज्ञान
(४) नाम-रूप
(५) षडायतन
(६) स्पर्श
(७) वेदना
(८) तृष्णा
(९) उपादान
(१०) जाति
(११) भव
(१२) जरा-मरण,दुःख-दौर्मनस्य-उपायास

भगवान् अनुलोम-प्रतिलोम देशना द्वारा प्रतीत्यसमुत्याद के द्वादशांगो का उपदेश देते है। अनुलोम-देशना द्वारा भगवान् उत्पत्ति-क्रम को समझाते है अर्थात् किस-किस कारण से किस-किस की उत्पत्ति होती है। प्रतिलोम-देशना द्वारा वह यह दिखलाते है कि जरा-मरणादि दु.खो का क्या कारण है ?

O

---

१. पातजल योग-सूत्र, साधनपाद, सूत्र १६

कुशल कर्म-पथ—

(१) प्राणातिपात-विरति
(२) अदत्तादान-विरति
(३) काममिथ्याचार-विरति
(४) मृषावाद-विरति
(५) पैशुन्य-विरति
(६) पारुष्य-विरति
(७) संभिन्नप्रलाप-विरति
(८) अनभिध्या
(९) अव्यापन्नचित्तता
(१०) सम्यक्-दृष्टि

उपर्युक्त दस अकुशल कर्म-पथो के अत्यधिक आसेवन के कारण ही नारक (नरक-गति वाले) उत्पाट, अनुपाट, छेदन, भेदनादि दुःखों का अनुभव करते है। इन्ही दस अकुशल कर्म-पथों के आसेवन के परिणाम स्वरूप ही तिर्यक्-गति वाले अन्योन्यभक्षणादि दुःखो का अनुभव करते है और मात्सर्य युक्त एवं कजूस होने से प्रेत-गति वाले क्षुत्तृपादि दुःखो का अनुभव करते है।[1]

उपर्युक्त दस कुशल कर्म-पथो के अत्यधिक आसेवन से देव-गति वाले दिव्य स्त्री, ललित विमान, उद्यानादि सुखो का अनुभव करते है तथा इन्ही दस कुशल कर्म-पथो का तनुतर एव मृदुतर रूप से आसेवन कर मनुष्य-गति वाले हस्ति, अश्व, रथ, अन्न, पान, शयन, आसन, स्त्री एव ललितोद्यान-सुख का अनुभव करते है।[2]

o

---

१. सहसोद्गतावदान, पृ० १८६।
२. वही, पृ० १८७।

परिच्छेद १५

कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त

[क] पूर्व स्वकृत कर्मों पर विश्वास

अपने पूर्व जन्मों में किए गये कर्मो पर लोगो का दृढ़ विश्वास था। जीव स्व-अनुष्ठित कर्मो के अनुसार ही फल का भोग करता है। भिक्षाटन करते हुए प्राप्त आहारो से तृप्ति का अनुभव न करता हुआ, धर्मरुचि सोचता है—

"किं मया कर्म कृतं यस्य कर्मणो विपाकेन न कदाचित् वितृप्यमान आहारमारागयामि"[1] ?

काचनमाला को जब अपने पति कुणाल के नेत्रोद्धरण का समाचार ज्ञात होता है, तो वह मूर्छित हो जाती है एवं अश्रु-मोचन करती हुई नाना प्रकार से विलाप करती है। उसको इस प्रकार से विकल होते देख कुणाल कहते है कि यह तो अपने ही कृत-कर्मो का फल है। अतः शोक करना उचित नही। वह उसे सान्त्वना प्रदान करने के निमित्त इस सत्य का उद्घाटन करते है—

"कर्मात्मकं लोकमिदं विदित्वा
दुःखात्मकं चापि जनं हि मत्वा।
मत्वा च लोकं प्रियविप्रयोग
कर्तुं प्रिये नार्हसि वाष्पमोक्षम् ॥"[2]

पिता अशोक के द्वारा इस दुष्कर्म को करने वाले व्यक्ति का नाम पूछे जाने पर भी कुणाल कहता है—

---

१. धर्मरुच्यवदान, पृ० १४६।
२. कुणालावदान, पृ० २६७।

"स्वयकृतानामिह कर्मणां फलं
कथं तु वक्ष्यामि परैरिदं कृतम् ॥"[1]

वीतशोक आभीर को अपनी ओर तलवार लिए हुए आते देख सोचता है कि "स्वयं-कृत कर्मों का ही यह फल उपस्थित हुआ है"।[2]

भिक्षुओं के पूछने पर भगवान् बुद्ध कहते हैं कि पूर्व-जन्म में जब यह वीतशोक लुब्धक था, तब इसने प्रत्येक-बुद्ध को मृग-वध करने में बाधक जान, तलवार द्वारा उसका वध कर दिया था। इसी कारण यह शस्त्र द्वारा मारा गया।[3]

[ख] कर्मों का फल अवश्य भावी

मनुष्य जैसे कर्मों का अनुष्ठान करता है, तदनुरूप फलों का ही वह भोक्ता भी होता है। किसी एक व्यक्ति द्वारा कृत कर्मों के फल की प्राप्ति तदितर प्राणी को नहीं हो सकती। अन्तःपुर के अग्नि से जलने पर श्यामावती ऋद्धि द्वारा आकाश में जा कर कहती है—

"भगिन्यः, अस्माभिरेवैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययान्योघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यभावीनि । अस्माभिरेव कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ?"[4]

भगवान् बुद्ध का कहना है कि प्राणी को किसी भी किये हुए कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। अन्तरिक्ष, समुद्रमध्य और पर्वत-गह्वर में ऐसा कहीं भी कोई स्थल नहीं है, जहाँ स्थित होने पर प्राणी को कर्मों का फल न भोगना पड़े।

"नैवान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये
न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।
न विद्यते स पृथिवीप्रदेशो
यत्र स्थितं न प्रसहेत कर्म ॥"[5]

---

१. कुणालावदान, पृ० २६९ ।
२. वीतशोकावदान, पृ० २७७ ।
३. वही, पृ० २७८ ।
४. माकन्दिकावदान, पृ० ४५७ ।
५. वही, पृ० ४५७ । रुद्रायणावदान, पृ० ४७५ ।

राजा अशोक, जब कुणाल से नेत्र-निष्कासन कर्म करने वाले का नाम पूछते है, तो वह कहता है —

"राजन्नतीतं खलु नैव शोच्य
किं न श्रुतं ते मुनिवाक्यमेतत् ।
यत्कर्मभिस्तेऽपि जिना न मुक्ताः
प्रत्येकबुद्धाः सुदृढैस्तथैव ॥"[1]

भगवान् बुद्ध ने बार-बार कहा है कि उपचित-कर्मों का विपाक न बाह्य पृथिवी-धातु मे, न अप-धातु मे, न तेज-धातु मे और न वायु-धातु मे होता है; अपितु वे शुभाशुभ कृत-कर्म तो उपात्त स्कन्ध-धातु-आयतन के पुंज-भूत स्थूल देह में ही फलीभूत होते है।

'न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥"[2]

[ग] कर्म–विपाक

"दिव्यावदान" की सभी कथाओं से यह सुष्ठुरूपेण परिज्ञात होता है कि कर्म बीज के सदृश है, जो अपने फल का उत्पाद अवश्य करता है। कर्म का विप्रणाश नही। जब समय आता है और प्रत्यय-सामग्री उपस्थित होती है, तब कर्मो का विपाक होता है।

एकान्त कृष्ण-कर्मो का विपाक एकान्त कृष्ण, एकान्त शुक्ल-कर्मो का विपाक एकान्त शुक्ल तथा व्यतिमिश्र-कर्मो का विपाक व्यतिमिश्र होता है। अतएव भगवान् बुद्ध एकान्त कृष्ण एव व्यतिमिश्र कर्मो का त्याग कर केवल एकान्त शुक्ल-कर्मो के अनुष्ठान का आदेश भिक्षुओं को सदा देते है—

"..........इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येव वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्" ।[3]

---

१. कुणालावदान, पृ० २६६ ।
२. अशोकवर्णावदान, पृ० ८८ ।, सहसोद्गतावदान, पृ० १६४ ।
३. सहसोद्गतावदान, पृ० १६४ ।

परिच्छेद १६

चिरन्तन सत्य

[क] शरीर की अपावनता

उपगुप्त वासवदत्ता गणिका को उपदेश देते हैं कि नाना-विध कामोत्पादक वस्त्राभरणो से आच्छादित इस प्राकृत कुणप मे रति रखने वाला निश्चय ही अपडित, अज्ञानी एव विगर्हणीय है। वस्तुतः यह शरीर त्वचा, रुधिर, माँस, चर्म, एव सहस्रों शिराओ से युक्त है। इस शरीर के दौर्गन्ध्य का निवारण करने के लिए अनेक प्रकार की सुगन्धियो का प्रयोग किया जाता है। इस शरीर के वैकृत्य (विकलता) को विविध वस्त्राभूषणो से छिपाया जाता है। इस शरीर से निर्गत स्वेद, मलादि अशुचियो का निर्हरण जल से किया जाता है। इस अमेध्य एव अशुभ शरीर का सेवन केवल कामीजन ही करते हैं। पंडित लोग इस के प्रति सरक्त चित्त वाले नही होते।

'बहिर्भद्राणि रूपाणि दृष्ट्वा बालोऽभिरज्यते।
अभ्यंतरविदुष्टानि ज्ञात्वा धीरो विरज्यते ॥'[1]

प्राज्ञवी इस शरीर का पैर से भी स्पर्श नही करता। वस्तुतः यह लोक मोह-संवर्धन करने वाला है, केवल देखने मे भव्य-रूप है। इस प्रकार की असद्-वस्तु मे सद्-दृष्टि का होना ही अविद्या है, जो सर्वक्लेशप्रसवा मूलरूपा है। अतः भगवान् भिक्षुओ को उपदेश करते है—

"..........तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्य, यद्दग्धस्थूणायामपि चित्तं न प्रदूषयिष्यामः प्रागेव सविज्ञानके काये। इत्येव वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्"।[2]

---

१. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२०।
२. माकन्दिकावदान, पृ० ४५६।

[ख]जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु :

"सव क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥"[1]

मिलन के बाद विछोह ससार का एक शाश्वत् सिद्धान्त है । इस का अपवाद कही नही मिलता। मैत्रकन्यक ब्रह्मोत्तर नगर मे ३२ अप्सराओं के द्वारा प्रभूत सत्कार एव विषय-सुख का भोग प्राप्त कर उन से कहता है—

"इच्छामि गन्तुं तदहं भवन्त्यो
मा मत्कृते शोकह्लदे शयीध्वम् ।
सपातभद्राणि हि कस्य नाम
विश्लेषदुःखानि न सन्ति लोके ॥"

और जो इस विश्लेष-दुःख से दुःखित होते है, वे मूढ-मति है। वह इस उपनिषद् सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है—

वाताहताम्भोधितरंगलोले
ये जीवलोके बहुदुःखभीमे ।
विश्लेषदुःखाय रतिं प्रयान्ति
तेषां परो नास्ति विमूढचेताः ॥"[2]

सयोग का वियोग में परिणत होना एक स्वाभाविक नियम है । अतः संसार की अनित्यता को ज्ञात कर धीर पंडित जन उन मे विकृत नही होते। प्रव्रज्या-ग्रहण के लिए वीतशोक का अचल निश्चय जान कर राजा अशोक स्नेह-वश रोने लगते है। इस पर वीतशोक इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते है—

"संसारदोलामभिरुह्य लोलां
यदा निपातो नियतः प्रजानाम् ।
किमर्थमागच्छति विक्रिया ते
सर्वेण सर्वस्य यदा वियोगः ॥"[3]

---

१. पूर्णावदान, पृ० १७ ।

२ "मैत्रकन्यकावदान, पृ० ५०६—५०७ ।

३ वीतशोकावदान, पृ० २७५ ।

रुद्रायण कहते है— न भैषज्य, न धन, न ज्ञाति-जन, न विद्या, न बल और न शौर्य ही प्राणी को इस विकराल मृत्यु से बचा सकते हैं। वह फिर कहते है—

"देवापि सन्तीह महानुभावाः
स्थानेष्विहोच्चेषु चिरायुषोऽपि ।
आयुःक्षयान्तेऽपि ततश्च्यवन्ते
मुच्येत को नेह शरीरभेदात् ।।
राज्यानि कृत्वापि महानुभावा
वृष्ण्यन्धकाः कुरवश्च पाण्डवाश्च ।
संपन्नचित्ता यशसा ज्वलन्तः
ते न शक्ता मरणं नोपगन्तुम् ।।
न संयमेन तपसा न राजन्
न कर्मणा वीर्यपराक्रमेण वा ।
न वित्तपूर्णैर्न धनैरुदारैः
शक्यं कदाचिन्मरणाद्विमोक्तुम् ।।
नैवान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये
न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।
न विद्यते स पृथिवीप्रदेशो
यत्र स्थित न प्रसहेत मृत्युः ।।"[1]

तत्त्ववादियो की, नेत्र-निष्कासन के कठोर आदेश का श्रवण कर भी, कुणाल— "पश्यानित्यमिद सर्व नास्ति कश्चिद् ध्रुवे स्थितः"—इस उक्ति का स्मरण करता हुआ निरपराधी होने पर भी प्रसन्नता-पूर्वक अपने दोनों नेत्र निकलवा डालता है।[2]

मनुष्य अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही दुःखो का भोग करता है। इस ससरण-क्रम मे उसका कोई साथी नही होता—

"एको ह्ययं जायते जायमान—
स्तथा म्रियते म्रियमाणोऽयमेक।

---

१ रुद्रायणावदान, पृ० ४७५।

२ कुणालावदान, पृ० २६५।

एको दुःखाननुभवतीह जन्तु—
र्न विद्यते संसरतः सहायः ॥"[१]

इस सत्यता का ज्ञान प्राप्त कर, जो सर्व संग-परित्याग कर प्रव्रज्या-ग्रहण कर लेते है, वे पुन: जन्म-ग्रहण नही करते—

"एतच्च दृष्ट्वेह परिव्रजन्ति
कुलायकास्ते न भवन्ति सन्तः ।
ते सर्वसगानभिसप्रहाय
न गर्भशय्यां पुनरावसन्ति ॥"[२]

इस प्रकार संसार की अनित्यता एव भयावह और दुःख उत्पन्न करने वाले दृश्यो के द्वारा लोक की निःसारता को समझ कर पण्डित-जन वन का आश्रयण करते थे । वासवराजा का पुत्र रत्नशिखी जीर्ण, आतुर (रुग्ण) एवं मृत दृश्यो को देख वन मे चला जाता है और जिस दिन वह वन मे जाता है, उसी दिन अनुत्तर ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, जिससे वह रत्नशिखी सम्यक् सबुद्ध के नाम से सुप्रसिद्ध हो जाता है ।[३]

वस्तुतः जो काम से विमुख होकर शान्त वन मे निकल जाते है, वे ही संसार-सागर को पार करते है—

"त्यक्त्वा कामनिमित्तमुक्तमनसः शान्ते वने निर्गताः
पार यान्ति भवार्णवस्य महतः सश्रित्य मार्गप्लवम् ॥"[४]

O

---

१. रुद्रायणावदान, पृ० ४७६ ।
२. वही, पृ० ४७६ ।
३. मैत्रेयावदान, पृ० ३८ ।
४. पांशुप्रदानावदान, पृ० २२१ ।

छठा अध्याय

शिक्षा

परिच्छेद १ शिक्षार्थी

परिच्छेद २ शिक्षक

परिच्छेद ३ शिक्षा के विषय

परिच्छेद ४ शिक्षा-प्रणाली

परिच्छेद ५ स्त्री-शिक्षा

परिच्छेद १

शिक्षार्थी

शिक्षार्थी को "माणवक"[1] की संज्ञा दी जाती थी। छात्रों का कर्त्तव्य गुरु के प्रति भक्ति-भाव रखना तथा उनकी सेवा-शुश्रूषा करना होता था।

छात्र-जीवन मे आत्म-अनुशासन, इन्द्रियों के संयम पर विशेष बल दिया जाता था। विद्या का अर्जन एक तपस्वी की भाँति करना पड़ता था। अध्ययन-काल तक शिष्य पूर्ण-रूपेण ब्रह्मचर्य का पालन करता था। राजा वासव के द्वारा पञ्च महाप्रदान अर्पित किये जाने पर माणवक सुमति उनमे से चार को ग्रहण करता है, किन्तु एक सर्वालंकरण विभूषिता कन्या का परित्याग कर देता है और कहता है—"अहं ब्रह्मचारी"।[2]

अध्ययन को समाप्त कर लेने पर ही विवाह का प्रश्न उठता था, जब वह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर "चीर्णव्रत" हो जाता था।[3]

o

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३७।, धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९,४२२।

२ धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।

३. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।

परिच्छेद २

शिक्षक

शिक्षकों में आचार्य[1], उपाध्याय[2] और अध्यापक[3] की गणना हुई है। ये वेद, शास्त्र, इतिहास, लिपि आदि अनेक विषयों की शिक्षा देते थे। इनके अतिरिक्त "परिव्राजक" भी थे, जो घूम-घूमकर निर्वेद और वैराग्य का प्रचार करते थे।[4] भिक्षु[5] और भिक्षुणियाँ[6] भी उपदेश देने का कार्य करती थीं। मंत्रों को धारण करने वाले की "मंत्रधर" संज्ञा थी।[7] शिक्षकों की एक संज्ञा "विद्यावादिक" भी थी।[8]

o

---

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।, धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२३।. चूडापक्षावदान, पृ० ४२६।
३. चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।, शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।
४. पूर्णावदान, पृ० २४।
५. रुद्रायणावदान, पृ० ४६६।
६. वही, पृ० ४७०।
७. शार्दूलकर्णावदान पृ० ३१९।
८. माकन्दिकावदान, पृ० ४५४।

परिच्छेद ३

शिक्षा के विषय

उस समय अध्ययन के कई विषय प्रचलित थे, जिन मे लोग शिक्षा प्राप्त कर पूर्ण निष्णात होते थे। तत्कालीन शिक्षा-विषयो को चतुर्धा विभाजित किया जा सकता है—

(१) बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विषय

लिपि[1], सख्या[2], गणना[3], मुद्रा[4], उद्धार[5], न्यास[6], निक्षेप[7], वस्तु परीक्षा[8], दारुपरीक्षा[9], रत्नपरीक्षा[10], हस्तिपरीक्षा[11], अश्वपरीक्षा[12], कुमारपरीक्षा[13],

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० १६ ।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५। कुणालावदान, पृ० २४६ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
२. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
३. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।, वही, पृ० ४२७ ।
४. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।, वही, पृ० ४२७ ।
५. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
६. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
७. वही, पृ० २ ।, वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
८. वही, पृ० २ । वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
९. पूर्णावदान, पृ० १६ ।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५ ।
१०. कोटिकर्णावदान, पृ० २ ।, पूर्णावदान, पृ० १६ ।, मैत्रेयावदान पृ० ३५ ।
११. पूर्णावदान, पृ० १६ ।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५ ।
१२. वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।
१३. वही, पृ० १६ ।, वही, पृ० ३५ ।

कुमारी या कुमारिका परीक्षा[1], वेद[2] (१. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. अथर्ववेद), वेद[3], (सांगोपांग), वेद[4] (सरहस्य), वेद[5] (सनिघण्टकैटभान्), वेद[6] (साक्षरप्रभेदान्), इतिहास[7], पदको (शो ?)[8], व्याकरण[9], कल्पाध्याय[10], यज्ञमंत्र[11], लोकायत[12], आयुर्वेद[13], अध्यात्म[14], भाष्यप्रवचन[15], ब्राह्मणिक[16], न्याय[17]।

(२) शारीरिक शिक्षा एवं युद्ध-शिक्षण सम्बन्धी विषय

हस्तिशिक्षा[18] या हस्तिग्रीवा[19], अश्वपृष्ठ[20], रथ[21], शर[22], धनुष[23],

---

१. पूर्णावदान, पृ० १६।, मैत्रेयावदान, पृ० ३५।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८, चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
३. वही, पृ० ३१८, ३१९।
४. वही, पृ० ३१८, ३१९।
५. वही, पृ० ३१८, ३१९।
६. वही, पृ० ३१८, ३१९।
७. वही, पृ० ३१८, ३१९।
८. वही, पृ० ३१८, ३१९।
९. वही, पृ० ३१८, ३१९।
१०. वही, पृ० ३१८, ३१९।
११. वही पृ० ३१८, ३१९।
१२. वही, पृ० ३१८, ३१९, ३२८।
१३. वही, पृ० ३२८।
१४. वही, पृ० ३२८।
१५ वही, पृ० ३२८।
१६. चूडापक्षावदान, पृ० ४२७।
१७. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८।
१८. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।
१९. कुणालावदान, पृ० २४९।
२०. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।, कुणालावदान, पृ० २४९।
२१. वही, पृ० ३५।, वही, पृ० २४९।
२२ वही, पृ० ३५।, वही, पृ० २४९।
२३. वही, पृ० ३५।, वही, पृ० २४९।

प्रयाण[1], निर्याण[2], अंकुशग्रह[3], पाशग्रह[4], तोमरग्रह[5], यष्टिवन्ध[6], मुष्टिवन्ध[7], पदवन्ध[8], शिखावन्ध[9], दूरवेध[10], मर्मवेध[11], अक्षुण्ण वेध[12], दृढप्रहार[13]।

(३) ज्यौतिष सम्बन्धी विषय

महापुरुषलक्षण[14], मृगचक्र[15], नक्षत्रगण[16], तिथिक्रमगण[17], कर्मचक्र[18], अगविद्या[19], वस्त्रविद्या[20], शिवाविद्या[21] या शिवारुतम्[22], शकुनिविद्या[23],

---

१. मैत्रेयावदान, पृ० ३५।
२. वही, पृ० ३५।
३. वही, पृ० ३५।, कुणालावदान, पृ० २४६।
४. वही, पृ० ३५।
५. वही, पृ० ३५।, कुणालावदान, पृ० २४६।
६. वही, पृ० ३५।
७. वही, पृ० ३५।
८. वही, पृ० ३५।
९. वही, पृ० ३५।
१०. वही, पृ० ३५।
११. वही, पृ० ३५।
१२. वही, पृ० ३५।
१३. वही, पृ० ३५।
१४. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१८, ३१९।
१५. वही, पृ० ३२८।
१६. वही, पृ० ३२८।
१७. वही, पृ० ३२८।
१८. वही, पृ० ३२८।
१९. वही, पृ० ३२८।
२०. वही, पृ० ३२८।
२१. वही, पृ० ३२८।
२२. वही, दृ० ३९६।
२३. वही, पृ० ३२८।

राहुचरित,[१] शुक्रचरित[२], ग्रहचरित,[३] पक्षाध्याय[४], भूमिकम्पनिर्देश[५], व्याधिसमुत्थान[६], तिलकाध्याय[७], उत्पातचक्रनिर्देश[८], पुरुषपिन्य[९], पिटकाध्याय[१०], स्वप्नाध्याय[११], मासपरीक्षा[१२], खंजरीटकज्ञान[१३], पाणिलेखा[१४], वायसरुतम्[१५], द्वारलक्षण[१६], द्वादशराशि[१७], कन्यालक्षण[१८], लुङ्गाध्याय[१९], धूमिकाध्याय[२०]।

(४) धारणी एव वशीकरण विद्या-विषय

१. षडक्षरी विद्या[२१]—षडक्षरी से यहाँ यह तात्पर्य नही कि इस में ६ अक्षर हो। अपितु यह एक धारणी ज्ञात होती है, जिस का कार्य बौद्ध-धर्म मे,

१ शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८।
२. वही, पृ० ३२८।
३. वही, पृ० ३२८।
४. वही, पृ० ३२८।
५. वही, पृ० ३५७।
६. वही, पृ० ३६४।
७. वही, पृ० ३६८।
८. वही, पृ० ३७१।
९. वही, पृ० ३८०।
१०. वही, पृ० ३८२।
११. वही, पृ० ३८५।
१२. वही, पृ० ३९३।
१३. वही, पृ० ३९४।
१४. वही, पृ० ३९९।
१५. वही, पृ० ४०२।
१६. वही, पृ० ४०५।
१७. वही, पृ० ४०७।
१८. वही, पृ० ४१०।
१९. वही, पृ० ४१४।
२०. वही, पृ० ४२०।
२१. वही, पृ० ३१५।

अथर्ववेदीय मत्रो के समान, रक्षा करना था । इस का महायान-साहित्य मे वडा स्थान था ।

भगवान् बुद्ध आनन्द को षडक्षरी-विद्या का उपदेश देते है । वह, आनन्द के स्वय अपने हित और सुख के लिए तथा भिक्षु-भिक्षुणी. उपासक-उपासिकाओं के हित और सुख के लिए इस विद्या को धारण करने तथा इसका उपदेश करने को कहते हैं । यह विद्या इस प्रकार वर्णित है—

"अण्डरे पाण्डरे कारण्डे केयूरेऽर्चिहस्ते खरग्रीवे वन्धुमति वीरमति धर विध चिलिमिले विलोडय विषाणि लोके । विष चल चल । गोलमति गण्डविले चिलिमिले सातिनिम्ने यथासंविभक्ते गोलमति गण्डविलायै स्वाहा ।"

इस षडक्षरी-विद्या का इतना प्रभाव है कि भगवान् कहते है, "हे आनन्द ! इस विद्या द्वारा स्वस्त्ययन-परित्राण किये जाने पर जो वध के योग्य होता है, वह केवल दण्ड से ही छूट जाता है, दण्डार्ह प्रहार मे, प्रहारार्ह परिभाषण (अपशब्द) से, परिभाषणार्ह रोमहर्षण से और रोमहर्षणार्ह भी पुनः निर्मुक्त हो जाता है । हे आनन्द ! देवलोक, मारलोक, ब्रह्मलोक, श्रमण, ब्राह्मण, प्रजा, देव, मनुष्य तथा असुरो मे, मैं कही किसी ऐसे व्यक्ति को नही देखता जो, केवल पूर्वकर्म-विपाक को छोडकर, इस षडक्षरी विद्या के द्वारा रक्षा किये जाने पर भी अभिभूत हो" ।[1]

२. वशीकरण-विद्या[2]—इसके द्वारा लोगों को अपने अनुकूल किया जाता था । प्रकृति की माता आनन्द को अपने घर ले आने के लिए वशीकरण-मंत्र का प्रयोग करती है । वह घर के आँगन के मध्य मे गोवर का लेप लगा, वेदी वनाकर दर्भो कुशो) को फैलाकर अग्नि प्रज्वलित करती है और निम्न मत्रोच्चारण कर एक-एक अर्क (मदार) के पुष्प की आहुति देती जाती है—

"अमले विमले कुङ्कुमे सुमने । येन बद्धासि विद्युत् । इच्छया देवो वर्षति विद्योतति गर्जति । विस्मय महाराजस्य समभिवर्धयितुं देवेभ्यो मनुष्येभ्यो गन्धर्वेभ्यः शिखिग्रहा देवा विशिखिग्रहा देवा आनन्दस्यागमनाय संगमनाय क्रमणाय ग्रहणाय जुहोमि स्वाहा" ।।[3]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१५-३१६ ।
२. वही, पृ० ३१४ ।
३. वही, पृ० ३१४ ।

यह प्रक्रिया अथर्ववेद के कौशिक-सूत्र से समता रखती है ।

इनके अतरिक्त कुछ अन्य रहस्यमयी विद्याओ एव मंत्रों के नाम ये हैं[१]—

(१) मैत्री

(२) शिखी

(३) संक्रामणी

(४) प्रक्रामणी

(५) स्तम्भनी

(६) कामरूपिणी

(७) मनोजवा

(८) गान्धारी

(९) घोरी

(१०) वशंकरी

(११) काकवाणी

(१२) इन्द्रजाल

(१३) भञ्जनी

इन उपर्युक्त विषयो मे से कुछ का उल्लेख "ललितविस्तर" में भी प्राप्त होता है । "दिव्यावदान" और "ललितविस्तर" दोनों में प्राप्त होने वाले समान विषयों की तालिका निम्नलिखित है—

(१) लिपि

(२) मुद्रा

(३) गणना

(४) संख्या

(५) धनुर्वेद या धनुष्कलाप

(६) इषु

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३२ ।

(७) हस्तिग्रीवा
(८) रथ
(९) अश्वपृष्ठ
(१०) अंकुशग्रह
(११) पाशग्रह
(१२) मुष्टिवन्ध
(१३) शिखावन्ध
(१४) अक्षुण्णविधित्व
(१५) मर्मवेधित्व
(१६) स्वप्नाध्याय
(१७) शकुनिरुतम्
(१८) स्त्रीलक्षण
(१९) अश्वलक्षण
(२०) हस्तिलक्षण
(२१) कैटभ
(२२) निघण्टु
(२३) इतिहास
(२४) वेद
(२५) व्याकरण
(२६) यज्ञ
(२७) ज्यौतिष
(२८) लोकायत
(२९) हेतुविद्या [न्याय दर्शन]

"दिव्यावदान" और "प्रवन्धकोश" मे प्राप्त समान विषयो की सूची इस प्रकार है—

(१) लिखितम्
(२) गणितम्

(३) व्याकरणम्

(४) निघण्टुः

(५) रत्नपरीक्षा

(६) आयुधाभ्यासः

(७) गजारोहणम्

(८) तुरगारोहणम्

(९) मंत्रवादः

(१०) शाकुनम्

(११) वैद्यकम्

(१२) इतिहासः

(१३) वेदः

o

परिच्छेद ४

शिक्षा-प्रणाली

विद्याध्ययन के अधिकारी सभी जाति के लोग थे। इसमे ब्राह्मणो का ही केवल एकाधिकार नही था। मातगराज त्रिशकु अपने पुत्र शार्दूलकर्ण को वेद तथा अन्य शास्त्रों को पढाता है।[१]

बालक के बड़े होने पर माता-पिता उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु के पास भेज देते थे। लिपि या अक्षरो की शिक्षा जहाँ दी जाती थी, उसे लिपिशाला[२] या लेखशाला[३] कहते थे। चन्द्रप्रभ दारक जब लगभग आठ वर्ष का होता है, तो उसके माता-पिता उसे स्नान करा कर तथा वस्त्रालंकारो से सज्जित कर अनेक अन्य दारको के साथ लिपि सीखने के लिए भेजते है।[४]

भिन्न-भिन्न विषयों की शिक्षा देने के लिए पृथक्-पृथक् अध्यापक थे। "लिप्यक्षराचार्य"[५] लिपि एवं अक्षरो की शिक्षा देते थे। इसी प्रकार "इष्वस्त्राचार्य" धनुष चलाने आदि की शिक्षा देते थे।[६]

अध्ययन-काल में छात्र ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता था। वैदिक-युग की तरह आचार्य-उपाध्याय को गुरु-दक्षिणा देने की भी प्रथा थी। सुमति और मति नाम के दो माणवक वेदाध्ययन समाप्त कर उपाध्याय को दक्षिणा देने के लिए चिन्तित होते है। सुमति राजा वासव के द्वारा प्रदान किये गये महाप्रदानो को ले जाकर अपने उपाध्याय को अर्पित करता है।[७]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१९।
२. रुपावत्यवदान, पृ० ३१०।
३. स्वागतावदान, पृ० १०६।
४. रूपावत्यवदान, पृ० ३१०।
५. स्वागतावदान, पृ० १०५।
६. माकन्दिकावदान, पृ० ४५४।
७. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५२।

केवल नियमित शिक्षा-अवधि की समाप्ति पर ही शिक्षा की समाप्ति नही हो जाती थी। त्यागमय जीवन ग्रहण कर बहुजनहिताय एवं बहुजनसुखाय घूमते रहने वाले विद्वान को "चरक" कहा गया है। भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को घूमते रहने का आदेश दिया था। बुद्ध ने देशनानन्तर पूर्ण से कहा था—"जाओ, पूर्ण ! दूसरो को विमुक्त करो। दूसरो को संसार से पार लगाओ"।[1]

कथा-शैली भी तत्कालीन एक लोकप्रिय शिक्षा-प्रणाली थी। इस के द्वारा गुरु रोचक एव उपदेशपूर्ण कथाएँ सुना कर शिष्य की शेमुषी को प्रांजल, विदग्ध एवं निर्मल करता था। भगवान् बुद्ध मातगदारिका प्रकृति को धार्मिक कथाओं के द्वारा उपदेश देते है (सदर्शयति), एव उस कथा के प्रति रुचि जागृत करते है (समादापयति), उत्तेजित करते है (समुत्तेजयति) और हर्ष उत्पन्न करते हैं (सप्रहर्षयति)। वे कथाएँ थी—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्गकथा, विषयो मे स्थित दोप की कथा (कामेष्वादीनवम्), काम-पलायन (निःसरण), विषय-भय एव सक्लेशव्यवदान की कथा।[2]

सदेह के लिए तीन शब्द प्रयुक्त हुए है[3]—'काड्क्षा", "विमति" और "विचिकित्सा"। किसी प्रकार का सन्देह न रहने को "विगतकथकथा" कहते थे।[4] किसी विषय को कण्ठस्थ कर लेना " पर्यवाप्" था।[5] छुट्टी (अनध्याय) के लिए "अपाठ" शब्द था।[6]

शारीरिक शक्ति का अर्जन उस समय की शिक्षा का उद्देश्य था। यही कारण है कि अन्य विषयो के अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा भी दी जाती थी। स्थविर उपगुप्त राजा अशोक को कपिलवस्तु के स्थानो को दिखलाते हुए कहते है—"यह बोधिसत्त्व की "व्यायामशाला" थी।"[7]

---

१. पूर्णावदान, पृ० २४।
२. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७।
३ वही, पृ० ४२४।
४. वही, पृ० ३१७।
५. वही, पृ० ३१५।
६ चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
७ कुणालावदान, पृ० २४६।

अध्ययन के इन अनेक विषयो के होने का यह अभिप्राय था कि छात्र केवल एक ही विषय का अध्ययन न कर, नाना-विध शास्त्रों मे पारंगत हो। यह बहुज्ञत्व ही शिक्षा का सच्चा मापदंड था, जिस के कारण छात्र शिक्षा-क्रम मे अनेक विषयो का अध्ययन करते थे।

"दिव्यावदान" में एक चाण्डाल के सर्व शास्त्रज्ञ होने की कथा प्राप्त होती है। मातंगराज त्रिशकु एव ब्राह्मण पुष्करसारी का वार्तालाप इस बात को प्रकट करता है कि ब्राह्मणत्व, जन्म पर या आचरण पर निर्भर करता है, ? मातंगराज त्रिशंकु अपने ज्ञान द्वारा ब्राह्मण पुष्करसारी को निरुत्तर एवं निष्प्रतिभ कर देता है।[1] वह उसे अनेक शास्त्र एव विद्याओं का ज्ञान कराता है। अन्त मे ब्राह्मण पुष्करसारी मातगराज त्रिशकु के प्रति अपने इन विचारो को व्यक्त करता है—

"भगवान् श्रोत्रियः श्रेष्ठस्त्वत्तो भूयान्न विद्यते।
सदेवकेषु लोकेषु महाब्रह्मा समो भवान्॥"[2]

इस प्रकार उस काल मे ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र मे भेद-भाव का कोई स्थान नही था।

महाभारत की कथा के अनुसार भी, जाजलि चाण्डाल ने विश्वामित्र को सत्यानृत का उपदेश दिया था।

o

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३१।
२. वही, पृ० ४२२।

परिच्छेद ५

स्त्री-शिक्षा

स्त्री-शिक्षा प्रचलित थी । स्त्रियो को भी शिक्षा-ग्रहण करने का अधिकार था । "माकन्दिकावदान" मे दारिकाओ के द्वारा, रात्रि मे बुद्धवचन का पाठ किये जाने का उल्लेख है ।[1]

तिष्यरक्षिता तक्षशिला-निवासियो के पास कुणाल के नेत्रोत्पाटनार्थ एक कपट-लेख लिखकर भेजती है ।[2]

मातगदारिका प्रकृति की माता, आनन्द के चित्त को आकृष्ट करने के लिए मंत्रों के जप द्वारा अग्नि मे आहुति देती है ।[3]

स्त्रियाँ संगीत-नृत्यादि ललित-कलाओ की शिक्षा भी ग्रहण करती थी । राजा रुद्रायण की पत्नी चन्द्रप्रभा देवी नृत्य मे अत्यन्त निपुण थी । कहा गया है कि जब राजा रुद्रायण वीणा-वादन करते थे, तो उस समय चन्द्रप्रभा देवी नृत्य करती थी ।[4]

भगवान् बुद्ध ने मातगदारिका प्रकृति को धर्म की शिक्षा दी थी ।[5] भगवान् बुद्ध एवं अन्य बौद्ध-भिक्षुओ के द्वारा अनेक स्त्रियो को धर्म-शिक्षा देने का उल्लेख है ।[6] आयुष्मान् पन्थक, भिक्षुणियो के अववादक (आध्यात्मिक

---

१ माकन्दिकावदान, पृ० ४५७ ।

२. कुणालावदान, पृ० २६४ ।

३ शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१४ ।

४. रुद्रायणावदान पृ० ४७० ।

५. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३१७ ।

६ वही पृ० ३१७ ।, पूर्णावदान, पृ० २४ ।

प्रवचन-कर्ता) के रूप में भगवान् बुद्ध के द्वारा नियुक्त किये गये थे ।[1]

अन्तःपुर को धर्म-देशना भिक्षुणियाँ करती थी । राजा रुद्रायण के अन्तःपुर को धर्मोपदेश देने के लिए शैला भिक्षुणी को भगवान् बुद्ध ने भेजा था ।[2]

o

१. चूडापक्षावदान, पृ० ४३२ ।

२ रुद्रायणावदान, पृ० ४६९ ।

परिच्छेद १

नक्षत्र

[क] नक्षत्र-वंश

नक्षत्र २८ है—कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित्, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी।[1]

ये २८ नक्षत्र चातुर्धा विभक्त हैं[2]—

(१) पूर्वद्वारकाणि

(२) दक्षिणद्वारकाणि

(३) पश्चिमद्वारकाणि, और

(४) उत्तरद्वारकाणि

कृत्तिका से लेकर आश्लेषा-पर्यन्त नक्षत्र "पूर्वद्वारकाणि" मे, मघा से विशाखा-पर्यन्त "दक्षिणद्वारकाणि" मे, अनुराधा से श्रवणा-पर्यन्त "पश्चिमद्वारकाणि" मे तथा धनिष्ठा से भरणी-पर्यन्त नक्षत्र "उत्तरद्वारकाणि" मे आते हैं।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३४।

२ वही, पृ० ३३४-३६।

संख्या	नक्षत्र-नाम	तारों की संख्या	संस्थानानि	मुहूर्तयोगानि	आहाराणि	दैवतानि	गोत्राणि
१.	कृत्तिका	षट्तारक	क्षुरसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	दध्याहार	अग्नि	वैश्यायनीय
२.	रोहिणी	पंचतारक	शकटाकृतिसंस्थान	पंचचत्वारिंशन्मुहूर्तयोग	मृगमासाहार	प्रजापति	भारद्वाज
३.	मृगशिरा	त्रितारक	मृगशीर्षसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	फलमूलाहार	सोम	मृगायणीय
४.	आर्द्रा	एकतारक	तिलकसस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	सर्पिमण्डाहार	सूर्य	हारीतायनीय
५.	पुनर्वसु	द्वितारक	पदसंस्थान	पचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	मध्याहार	अदिति	वासिष्ठ
६.	पुष्य	त्रितारक	वर्धमानसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	मधुमण्डाहार	बृहस्पति	औपमन्यवीय
७.	आश्लेषा	एकतारक	तिलकसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	पायस	सर्प	मैत्रायणीय
८.	मघा	पंचतारक	नदीकुब्जसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	तिलकृसराहार	पितृ	पिंगलायनीय
९.	पूर्वफल्गुनी	द्वितारक	पदकसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	बिल्व	भव	गौतमीय
१०.	उत्तरफाल्गुनी	द्वितारक	पदकसंस्थान	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	गोधूमत्स्याहार	अर्यमा	कौशिक
११.	हस्त	पचतारक	हस्तसस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	श्यामाक	सूर्य	काश्यप
१२.	चित्रा	एकतारक	तिलकसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	मुग्दकृसर—घृतपूपाहार	त्वष्ट्र	कात्यायनीय
१३.	स्वाती	एकतारक	तिलकसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	मुद्गकृसरफलाहार	वायु	कात्यायनीय

१४. विशाखा	द्वितारक	विषाणसंस्थान	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	तिलपुष्पाहार	इन्द्राग्नि	शाखायनीय
१५. अनुराधा	चतुस्तारक	रत्नावलीसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	सुरामासाहार	मित्र	आलम्बायनीय
१६. ज्येष्ठा	त्रितारक	यवमध्यसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	शालियवागू	इन्द्र	दीर्घकात्यायनीय
१७. मूल	सप्ततारक	वृश्चिकसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	मूलफलाहार	नैर्ऋति	कात्यायनीय
१८. पूर्वाषाढा	चतुस्तारक	गोविक्रमसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	न्यग्रोधकषाय	तोय	दर्भकात्यायनीय
१९. उत्तराषाढा	,,	गजविक्रमसंस्थान	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	मधुलाजाहार	विश्व	मौद्गलायनीय
२०. अभिजित्	त्रितारक	गोशीर्षसंस्थान	षण्मुहूर्तयोग	वायवाहार	ब्रह्म	ब्रह्मावतीय
२१, श्रवणा	,,	यवमध्यसंस्थान	त्रिशन्मुहूर्तयोग	पक्षिमासाहार	विष्णु	कात्यायनीय
२२. धनिष्ठा	चतुस्तारक	शकुनसंस्थान	,,	कुलत्थपूपाहार	वसु	कौण्डिन्यायनीय
२३. शतभिषा	एकतारक	तिलकसंस्थान	पंचदशमुहूर्तयोग	यवागु	वरुण	ताण्ड्यायनीय
२४. पूर्वभाद्रपद	द्वितारक	पदकसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	मांसरुधिराहार	अहिर्बुध्न्य	जातूकर्ण्य
२५. उत्तरभाद्रपद	,,	,,	पंचचत्वारिंशत् मुहूर्तयोग	मासाहार	अर्यमा	ध्यानद्राह्यायणीय
२६ रेवती	एकतारक	तिलकसंस्थान	त्रिंशन्मुहूर्तयोग	दध्याहार	पूप	अष्टभगिनीय
२७. अश्विनी	द्वितारक	तुरगशीर्षसंस्थान	,,	मधुपायस	गन्धर्व	मैत्रायणीय
२८. भरणी	त्रितारक	भगसंस्थान	,,	तिलतण्डुलाहार	यम	भार्गवीय

इन उपर्युक्त २८ नक्षत्रों में से छः—रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तरफल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और उत्तरभाद्रपद—पैंतालीस मुहूर्तयोग के होते हैं। आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, ज्येष्ठा और शतभिषा ये पाँच पन्द्रह मुहूर्तयोग के होते हैं। अकेला अभिजित् छः मुहूर्तयोग का और शेष, तीस मुहूर्तयोग के होते हैं।

इन में से सात—तीन पूर्व वाले अर्थात् पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वभाद्रपदा और विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु, स्वाती—चल वाले कहे गये हैं। आर्द्रा, आश्लेषा और भरणी ये तीन उग्र हैं। चार सम्माननीय हैं—तीन उत्तर पद वाले अर्थात् उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा और रोहिणी। पाँच मृदु हैं—श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा ज्येष्ठा और मूला। पाँच धारणीय हैं—हस्ता, चित्रा, आश्लेषा, मघा और अभिजित। चार क्षिप्रकरणीय हैं—कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्या, अश्विनी।

परन्तु यहाँ पंच धारणीय में आश्लेषा का सङ्कलन उचित नहीं प्रतीत होता। क्योंकि ऊपर तीन दारुण नक्षत्रों में इस नक्षत्र (आश्लेषा) की गणना हो चुकी है। अट्ठाईस नक्षत्रों में से यहाँ रेवती नक्षत्र का नाम नहीं आया है। अतः यह समीचीन प्रतीत होता है कि पंच धारणीय में आश्लेषा के स्थान पर रेवती की गणना की जाय।

[ख] नक्षत्र-योग[1]

इन अट्ठाईस नक्षत्रों के तीन योग होते हैं—

(१) ऋषभानुसारी योग—इस में नक्षत्र आगे जाता है और चन्द्र पीछे।

(२) वत्सानुसारी योग—इस में चन्द्र आगे और नक्षत्र पीछे जाता है।

(३) युगनद्ध योग—इस में चन्द्र और नक्षत्र समान रूप से साथ-साथ जाते हैं।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० २२६।

[ग] नक्षत्र-व्याकरण[1]

नक्षत्र नाम, जिस मे मनुष्य उत्पन्न हुआ है	तदनुसार मनुष्य की प्रकृति
कृत्तिका	यशस्वी
रोहिणी	सुभग एव भोगवान्
मृगशिरा	युद्धार्थी
आर्द्रा	अन्न और पान का उत्स (स्रोत)
पुनर्वसु	कृषिमान् एवं गोरक्षक
पुष्य	शीलवान्
आश्लेषा	कामुक
मघा	मतिमान् एवं महात्मा
पूर्वफल्गुनी	अल्पायु
उत्तरफल्गुनी	उपवासशील एवं स्वर्गपरायण
हस्ति	चौर
चित्रा	नृत्यगीतकुशल एव आभरणविधिज्ञ
स्वाती	गणक अथवा गणकमहामात्र
विशाखा	राजभट
अनुराधा	वाणिजक एव सार्थ
ज्येष्ठा	अल्पायु एवं अल्पभोग
मूल	पुत्रवान् एव यशस्वी
पूर्वाषाढा	योगाचार
उत्तराषाढा	भक्तेश्वर एवं कुलीन
अभिजित्	कीर्तिमान्
श्रवण	राजपूजित
धनिष्ठा	धनाढ्य
शतभिषा	मूलिक
पूर्वभाद्रपद	चौर सेनापति
उत्तरभाद्रपद	गन्धिक एवं गन्धर्व
रेवती	नाविक
अश्विनी	अश्ववाणिजक
भरणी	वध्यघातक

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३८-३३९ ।

[घ] नक्षत्रों का स्थान-निर्देश[1]

नक्षत्र-नाम	स्थान-निर्देश
कृत्तिका	कलिङ्ग और मगध
रोहिणी	सर्वप्रजा
मृगशिरा	विदेह और राजोपसेवक
आर्द्रा	क्षत्रिय और ब्राह्मण
पुनर्वसु	गोपगण
पुष्य	सभी अवदान वस्त्र वाले और राजपदसेवकों में
आश्लेषा	नाग एवं हैमवत
मघा	गौष्ठिक
पूर्वफाल्गुनी	चोर
उत्तरफाल्गुनी	अवन्ती
हस्त	सौराष्ट्रिक
चित्रा	द्विपद पक्षि
स्वाती	सभी प्रव्रज्या समापन्न लोगों में
विशाखा	औदक
अनुराधा	वाणिजक और शाकटिक
ज्येष्ठा	दौवालिक
मूला	पथिक
पूर्वाषाढा	वाह्लीक
उत्तराषाढा	काम्बोज
अभिजित्	सभी दक्षिणापथिक एवं ताम्रपर्णिक
श्रवण	घातक एवं चोर
धनिष्ठा	कुरु पाञ्चाल
शतभिषा	मौलिक एवं आथर्वणिक
पूर्वभाद्रपद	गन्धिक एवं यवन काम्बोज
उत्तरभाद्रपद	गन्धर्व
रेवती	नाविक
अश्विनी	अश्ववाणिजक
भरणी	भद्रपदकर्म एवं भद्रकायक

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३४१ ।

[ङ] नक्षत्रों के राहु-ग्रसित होने पर फल-विपाक[1]

नक्षत्र-नाम, जिसमे यदि चन्द्रग्रह हो	उनका नाम, जिन्हे उस चन्द्र-ग्रह के फलविपाक स्वरूप कष्ट उठाना पड़ता है
कृत्तिका	कलिङग मगध को पीड़ा
रोहिणी	प्रजाओ को पीड़ा
मृगशिरा	
आर्द्रा	विदेह जनपद वासियों और राजोपसेवकों को पीड़ा।
पुनर्वसु	
पुष्य	
आश्लेषा	नागो एवं हैमवतो को कष्ट
मघा	गौडिक
पूर्वफाल्गुनी	चौर
उत्तरफाल्गुनी	अवन्ती
हस्त	सौराष्ट्रिक
चित्रा	पक्षी एवं द्विपद
स्वाती	सर्व प्रव्रज्या समापन्न लोग
विशाखा	औदक सत्त्व
अनुराधा	वणिक एवं शाकटिक
ज्येष्ठा	दौवालिक
मूल	अध्वग
पूर्वाषाढा	अवन्ती
उत्तरापाढा	काम्वोज एवं वाह्लीक
अभिजित्	दक्षिणापथिक एवं ताम्रपर्णिक
श्रवण	चौर एवं घातक
धनिष्ठा	कुरु पांचाल
शतभिषा	मौलिक एवं आथर्वणिक
पूर्वभाद्रपद	गान्धिक एवं यवनकाम्वोज
उत्तारभाद्रपद	गन्धर्व
रेवती	नाविक
अश्विनी	अश्ववणिक्
भरणी	भरुकच्छ

1. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३४५।

[च] ध्रुव, क्षिप्र, दारुण और अर्धरात्रिक नक्षत्र[1]

(अ) चार नक्षत्र ध्रुव हैं—

(१) उत्तरफल्गुनी
(२) उत्तरापाढा
(३) उत्तरभाद्रपदा
(४) रोहिणी

इन नक्षत्रो मे बीज डालना चाहिए, गृह-निर्माण करना चाहिए एव राज-अभिषेक करना चाहिए। इन नक्षत्रों में नष्ट, दग्ध, विद्ध एवं हृत वस्तुएँ शीघ्र ही स्वस्ति लाभ करती हैं। इन नक्षत्रो मे उत्पन्न हुआ व्यक्ति धन्य, विद्यात्मा, यशस्वी, मगलकारी, महाभोगी एवं महायोगी होता है।

(आ) चार नक्षत्र क्षिप्र कहे गये —

(१) पुष्य
(२) हस्त
(३) अभिजित्
(४) अश्विनी

इन नक्षत्रो मे स्वाध्याय, मन्त्रसमारभ, प्रवासप्रस्थान, एव गाय और घोड़ो को जोतना आदि कार्य करना चाहिए। चातुर्मास्य यज्ञसमारभ करना चाहिए। इन नक्षत्रो मे नष्ट, दग्ध एव विद्ध वस्तुएँ शीघ्र ही स्वस्तिता को प्राप्त करती हैं। इन नक्षत्रो मे उत्पन्न व्यक्ति मंगलकारी, यशस्वी, महाभोगी, राजा, महायोगी, ऐश्वर्यशाली, अत्यन्त उत्ताम होता है। क्षत्रिय होने पर दान शील और यदि ब्राह्मण है तो पुरोहित होता है।

(इ) पांच नक्षत्र दारुण हैं—

(१) मघा
(२) पूर्वफल्गुनी

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३५३—३५४।

(३) पूर्वाषाढा

(४) पूर्व भाद्रपदा

(५) भरणी

इन नक्षत्रों में दग्ध, नष्ट एवं विद्ध हुई वस्तुएँ स्वस्तिता को नही प्राप्त होती।

[ई] छः नक्षत्र अर्धरात्रिक हैं—

(१) आर्द्रा

(२) आश्लेषा

(३) स्वाती

(४) ज्येष्ठा

(५) शतभिषा

(६) भरणी

रोहिणी, पुनर्वसु और विशाखा नवाश, षड्ग्रास और दो क्षेत्र वाले हैं।

उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तरभाद्रपदा उभयतो-विभागीय और पन्द्रह क्षेत्रो वाले है।

कृत्तिका, मघा, मूला, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वभाद्रपदा ये ६ पूर्वभागीय हैं।

मृगशिरा, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी ये ९ नक्षत्र पश्चाद्भागीय एवं ३० मुहूर्त योग और क्षेत्र वाले है।

नक्षत्र-नाम, जिसमें मनुष्य जन्म लेता है।	तदनसार उसके गुण
अनुराधा	मित्रवान्, संग्रही, शुचि, कृतज्ञ, धर्मात्मा
ज्येष्ठा	मित्रवान्, धनुर्वेद का ज्ञाता और स्त्रियो में प्रीति करने वाला
मूल	अकृतज्ञ, अधार्मिक, दृढ, वीर, किल्विषी
पूर्वाषाढा	मत्सरी, चंचल इन्द्रियों वाला, मत्स्य-मांसप्रिय और घातक
विश्वदैव	सानुक्रोश, दाता, विद्यानिष्ठ, सुहृज्जन
श्रवण	आचार्य, शास्त्रकर्त्ता, विश्वासी, क्रिया-परः, श्रीमान्
धनिष्ठा	अनवस्थितचित्त, चित्रद्रव्य, सर्वशकित
वारुणे	परुष, द्वेषशील, परिवादी, सर्वश
पूर्वभाद्रपदा	चरित्र-गुण-युक्त, कृतज्ञ, मुखर
उत्तरभाद्रपदा	विचक्षण, मेधावी, बहुत सतान वाला, धर्मशील, महाधनी
रेवती	धर्मात्मा, जातिसेवक, दरिद्र, अल्पधन, अननसूयक
अश्विनी	अतिविचक्षण, महाजनप्रिय, शूर, सुभग
भरणी	पापाचारी, अविचक्षण, काम-चित्त, उपजीवक

O

(१८) संयम
(१९) सांप्रयक
(२०) अनन्त
(२१) गर्दभ
(२२) राक्षस
(२३) अवयव
(२४) ब्रह्मा
(२५) दिति
(२६) अर्क
(२७) विधमन
(२८) आग्नेय
(२९) आतपाग्नि
(३०) अभिजित्

ये मुहूर्त द्विधा विभक्त है—(क) दिवसकालीन (ख) रात्रिकालीन। इन मुहूर्तो मे पहले पन्द्रह दिवसकालीन मुहूर्त और अन्तिम पन्द्रह रात्रिकालीन मुहूर्त है।

[क] दिवसकालीन मुहूर्त

सूर्य के उदय होने पर जब ९६ पौरुष की छाया हो, तो चतुरोजा नामक मुहूर्त होता है। ६० पौरुष छाया के होने पर श्वेत नाम का मुहूर्त, १२ पौरुष छाया के होने पर समृद्ध नामक मुहूर्त, ६ पौरुष छाया के होने पर शरपथ नामक मुहूर्त, ५ पौरुष छाया होने पर अतिसमृद्ध नामक मुहूर्त, ४ पौरुष छाया होने पर उद्‌गत नामक मुहूर्त और ३ पौरुष छाया के रहने पर सुमुख नामक मुहूर्त होता है। आदित्य के मध्याह्न मे स्थित होने पर वज्रक नामक मुहूर्त होता है। मध्याह्न के बाद ३ पुरुषो की छाया होने पर रोहित नाम का मुहूर्त, ४ पुरुषो की छाया होने पर वल नामक मुहूर्त, ५ पुरुषों की छाया होने पर विजय नामक मुहूर्त, ६ पुरुषो की छाया होने पर सर्वरस नामक मुहूर्त, १२ पुरुषो की छाया होने पर वसु नामक मुहूर्त, ६० पुरुषो की छाया होने पर

परिच्छेद ३

ग्रह

ग्रह सात बतलाये गये हैं[१]—

(१) चन्द्र
(२) आदित्य
(३) शुक्र
(४) बृहस्पति
(५) शनैश्चर
(६) अड्गारक
(७) बुध

इन ग्रहों मे बृहस्पति को सवत्सर-स्थायी कहा गया है। शनैश्चर, अड्गारक, बुध और शुक्र ये चार ग्रह मडल-चारी हैं।[२]

इन ग्रहो में राहु और केतु की गणना नही की गई है।

o

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३३६,३५५।
२ वही, पृ० ३५५।

परिच्छेद ४

तिथि-कर्म-निर्देशः

प्रतिपदा तिथि का नाम "नन्दा" है। यह सभी कार्यों के लिए प्रशस्त मानी गई है, किन्तु विज्ञान [विद्या] के आरम्भ और प्रवास के लिए वह गर्हित है।

द्वितीया को "भद्रा" कहते है। यह आभूषण आदि धारण करने के लिए शुभ है।

तृतीया को "जया" कहा गया है। यह विजय प्राप्त करने वाले कार्यो के लिए शुभ वतलायी गयी है।

चतुर्थी को "रिक्ता" कहा गया है। यह ग्राम-सैन्य-वध, चोरी, अभिचार [हिंसा-कर्म], कूट [छल-कपट], अग्निदाह और गोरस-साधन [मट्ठा, दूध, दही आदि] के लिए हितकारी है।

पंचमी "पूर्णा" कही गयी है। यह चिकित्सा, गमन-मार्ग, दान, अध्ययन, शिल्प एव व्यायाम के लिए कल्याणकारी है।

षष्ठी "जया" है। यह निन्दित मार्ग, गृह, क्षेत्र, विवाह अथवा आवाह-कर्म [वहू को घर लाने] के लिए प्रशस्त है।

सप्तमी "भद्रा" कही गयी है। यह पुण्य-मार्ग, राजाओ के शासन, छत्र और शय्या के निर्माण के जिए श्रेष्ठ है।

अष्टमी "महावला" है, वह परिरक्षण, भय, मन्दता, वद्ध, योग और हरण के लिए प्रशस्त है।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४२०-४२१।

नवमी को "उग्रसेना" कहा गया है। इसमें शत्रु का नाश, विष नाश आक्रमण, विद्या, बन्धन और वध-कर्म करना श्रेष्ठ माना गया है।

दशमी "सुधर्मा" है। यह शास्त्रारंभ, धनार्जन के लिए उद्यत होने, शान्ति स्वस्त्ययन के आरंभ के लिए तथा दान और यज्ञ करने के लिए तत्पर होने में प्रशस्त है।

एकादशी "मान्या" कही गई है। यह स्त्रियों तथा मास-मद्य में प्रवृत्ति [के लिए उचित है ?] तथा इसमें नगर [-निर्माण], रक्षण, विवाह एवं शास्त्र कर्म कराना चाहिए।

द्वादशी को "यशा" कहते है। यह विरोध और मार्ग-गमन के लिए वर्जित है तथा विवाह, पर्वत [आरोहण ?], कृषि-कार्य एवं गृह-कार्य के लिए प्रशस्त है।

त्रयोदशी "जया" कही गई है। यह स्त्रियो के समुदाय में श्रेष्ठ मानी गई है तथा कन्या-वरण, वाणिज्य एवं विवाहादि कार्यो के लिए अच्छी मानी गई है।

चतुर्दशी का नाम "उग्रा" है। इस तिथि मे अभिचार-कर्म, वध, और बन्धन के प्रयोग कराने चाहिए तथा [शत्रु पर] प्रथम प्रहार करना चाहिए।

पंचदशी "सिद्धा" कही गई है, जो देवता और अग्नि-कर्म के लिए श्रेष्ठ है तथा गो-संग्रह, वृषभ-त्याग, बलि-कर्म, जप एवं व्रत के लिए हितकारी है।

परिच्छेद ५

स्वप्न-विचार [1]

जो व्यक्ति देवता, ब्राह्मण, गौ, प्रज्वलित अग्नि, राजा, हाथी, घोडा, सुवर्ण, वृषभ आदि को स्वप्न के अन्त मे देखता है, उस का कुटुम्व वृद्धि को प्राप्त करता है। स्वप्न मे सारस, शुक, हंस, क्रौच तथा श्वेत पक्षियो को देखने वाले का कटुम्ब निश्चय ही बढ़ता है। समृद्ध शस्य, नई गायें, पुष्पित कमलिनी, भरा हुआ कलश, स्वच्छ जल तथा अनेक फूल जो स्वप्न के अन्त मे देखता है, उस का कुटुम्ब विकास को प्राप्त करता है। हाथ, पैर, या घुटने (जानु) में शस्त्र या धनुष के द्वारा जिस पर प्रहार किया जाता है, उस के यहाँ वस्त्रों की अभिवृद्धि होती है। जो व्यक्ति स्वप्न के अन्त मे तारा, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, तथा ग्रह को देखता है, उस के कुटुम्व की वृद्धि होती है। स्वप्न के अन्त मे अश्वपृष्ठ, गजस्कन्ध, यान और शय्या पर आरूढ होने वाला महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। जो स्वप्न मे गो युक्त रथ या घोड़े पर चढता है और उसी अवस्था मे जग जाता है, वह ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

स्वप्न मे शृगाल, नग्न मनुष्य, गोधा, वृश्चिक, सूकर, अजा (बकरी) आदि का दर्शन व्याधि-क्लेश को प्रकट करता है। काक, श्येन (वाज), उलूक, गृध्र, वर्तक (वगला), मयूर आदि को, स्वप्न मे देखना व्यसन का कारण होता है। अपने को नग्न, पांशु (धूल) से युक्त या कर्दम (कीचड़) से सना हुआ देखने वाला, व्याधि क्लेश को प्राप्त करता है।

धनुष, अन्य शस्त्र, आभूषण, ध्वजा या कवच का स्वप्न मे प्राप्त करना, धन-लाभ को द्योतित करता है। स्वप्न में सूर्य और चन्द्रमा का उदय

---

१ शार्दूलकर्णावदान, पृ० २८५-२९३।

देखना शुभकारी है। सूर्य और चन्द्र को अस्त होते हुए देखना राजा की विपत्ति का कारण होता है।

स्वप्न मे वृष्टि का होना, अशनि (वज्र) पात, भूमि-कम्प विपत्ति का निर्देश करते है। यदि स्वप्न मे चन्द्र और सूर्य खण्डित दिखलाई पड़ते है, तो द्रष्टा की आँख नष्ट हो जाती है। काषाय-वस्त्र को धारण करने वाली, मुंडित कपाल वाली, मलिन वस्त्र वाली या नीले और लाल वस्त्रो वाली स्त्री का स्वप्न मे दिखाई पडना, कष्ट का कारण होता है। स्वप्न मे सुरा, मैरेय, आसव और मधु को पान करने वाला व्यक्ति कष्ट को प्राप्त करता है। स्वप्न मे जल, पांशु (धूल) अथवा अगारो की वर्षा, मृत्यु का निर्देश करती है। कृष्णवसना, आर्द्र या मलिन वस्त्रो वाली स्त्री, जिस पुरुष का स्वप्न में आलिगन करती है, वह बन्धन (कैद) को प्राप्त करता है।

सुस्नात, सुन्दर वेश वाले तथा सुगन्धित और शुक्ल वस्त्र वाले पुरुष अथवा नारी का स्वप्न में दर्शन महान् सुख का कारण होता है। भद्र आसन पर अथवा सुसंस्कृत शयन पर आसीन पुरुष, स्त्री को प्राप्त करता है या स्त्री, पुरुष को प्राप्त करती है। जो पुरुष स्वप्न के अन्त मे शुक्ल और गध से अनुलिप्त वस्त्र को देखता है, उसे स्त्री-लाभ होता है। अन्न और आभूषणो को देखने वाला पुरुष, भार्या को और नारी, पति को प्राप्त करती है। मेखला (करधनी), कर्णिका (कान का आभूषण), माला और स्त्रियो के आभूषण को प्राप्त करने वाला पुरुष, भार्या को और नारी, पति को प्राप्त करती है। हाथी, बैल, नाग और ताराओ से युक्त चन्द्र-सूर्य की वन्दना जो नारी स्वप्न मे करती है, वह शीघ्र ही पति को प्राप्त करती है। तथा इन मे से कोई यदि स्त्री की कुक्षि मे प्रविष्ट होता दिखाई पडता है, तो वह पूर्ण अगो वाले श्रीमान् पुत्र को जन्म देती है। सभी फल तथा हरित वनो को स्वप्न के अन्त मे प्राप्त करने वाली नारी श्रीमान् पुत्र को उत्पन्न करती है। उत्पल कुमुद, पद्म एव खिलती हुई कलियो वाले पुडरीक को स्वप्न के अन्त मे प्राप्त करने वाली नारी श्रीमान् पुत्र को जन्म देती है।

स्वप्न मे गृह-निर्माण शुभ है और गृह-भेदन नही, निर्मल आकाश का दिखलाई पडना अच्छा है पर मेघ-युक्त आकाश अप्रशस्त, स्वच्छ जल प्रशस्त है किन्तु अस्वच्छ जल नही, सुवर्ण-दर्शन शुभ है किन्तु उस का धारण नही, मास दर्शन शुभ है पर उस का भक्षण अशुभ, मद्य का दर्शन प्रशस्त है पर पान

नही, हरिद् वर्ण की पृथ्वी का दर्शन प्रशस्त माना गया है, विवर्ण पृथ्वी का नही, यान पर चढना शुभ है उससे गिरना नही, रुदन प्रशस्त है पर हँसना नही, प्रच्छन्न दर्शन शुभ है किन्तु नग्न नही, माला का दिखलाई पड़ना अच्छा है पर उसका धारण नही, मन्द वायु का चलना अच्छा है पर तेज हवा का नही तथा पर्वत पर चढना प्रशस्त है पर उस से उतरना नही।

रात्रि के प्रथम काल मे देखा गया स्वप्न एक वर्ष मे अपना फल देता है, दूसरे प्रहर का स्वप्न छः महीने मे तीसरे प्रहर का छः पक्षो मे तथा रात्रि के चौथे प्रहर का स्वप्न आधे मास मे ही फलीभूत हो जाता है। गायो का दान, ब्राह्मणो का पूजन, अपने इष्ट-देव की अर्चना, श्रेष्ठ ब्राह्मण को तिल-पात्र का दान, शान्ति कर्म, स्वस्त्ययन प्रयोग, और गुरुओ की पूजा से दु.स्वप्न के प्रभाव का निवारण किया जाता है।

स्वप्न मे जलचरो एव मछलियो को देखने वाला व्यक्ति जो भी कार्य आरभ करता है, उसे वह शीघ्र ही समाप्त कर देता है। दूसरे घर के कुत्ते का दरवाजे पर पेशाव करना इस स्वप्न को देख कर जगे हुए व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि उस की स्त्री जार-कर्म की इच्छा वाली है।

जो स्वप्न मे समुन्द्र को देखता है या उस के जल को पीना चाहता है या वृक्ष, पर्वत, हाथी, घोडा आदि पर चढता है, उसे जगने पर यह जानना चाहिए कि उसे राज्य-लाभ होगा।

जो स्वप्न के बीच केश-श्मश्रु का कटना देखता है, उसे जगने पर अर्थ (धन) की प्राप्ति होती है। जो अपने को स्वप्न के अन्त मे कृष्ण सर्प से गृहीत देखता है, उसे शत्रु-पीडा होती है। जो स्वप्न के बीच अपने को अग्नि से सतप्त देखता है, उसे शीघ्र ही ज्वर हो जाता है। इसी प्रकार अपने सिर पर काष्ट-भार, तृण एव बहुत बोझ को देखने वाला किसी बड़ी व्याधि से ग्रसित हो जाता है। सुवर्ण, रूप्य (चाँदी) और मुक्ताहार (मोतियों का हार) को स्वप्न के बीच देखने वाला, निधि को प्राप्त करता है।

o

परिच्छेद ६

कन्या-लक्षण

कन्या के निन्दित एव प्रशस्त सभी लक्षणो का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शास्त्रकोविद उसके सभी अगो की परीक्षा करते है, यथा—हस्त, पाद, नख, अगुली, पाणिलेखा [रेखा], जॉघ, कटि, नाभि, उरु, ओष्ठ, जिह्वा, दन्त, कपोल, नासिका, अक्षिभ्रू, ललाट, कर्ण, केश, रोमराजि, स्वर, वर्ण, गीत, मति, सत्त्व ।[1]

[क] नारी के प्रशस्त लक्षण[2]

हसस्वरा, मेघवर्णा, मधुरलोचना एव दास-दासियो से परिवृत स्त्री आठ पुत्रो को जन्म देती हे । जो नारी मण्डूककुक्षि वाली है, वह ऐश्वर्य को प्राप्त करती है, धन्य पुत्रो को उत्पन्न करती है तथा उनकी प्रीति का भाजन होती है । जिस स्त्री के पाणितल मे कच्छप, स्वस्तिक, ध्वज, अकुश, कुण्डल, माला सुप्रतिष्ठित दिखाई देते है, वह एक पुत्र का प्रसव करती है और वह राजा होता है । जिस स्त्री के पाणितल मे तोरण सहित कोष्ठागार का चिह्न दिखाई पडता है, वह दास-कुल मे उत्पन्न होकर भी राजपत्नी होती है । जिस स्त्री के बत्तीसो दॉत गोक्षीर के समान पाण्डु वर्ण के होते है तथा समान शिखरो से युक्त स्निग्ध आभा वाले होते है, वह राजा को जन्म देती है । स्निग्धा, कारण्डवप्रेक्षा, हरिणाक्षी, तनुत्वचा और रक्त वर्ण के ओष्ठ तथा जिह्वा वाली ऐसी सुमुखी स्त्री राजा की पत्नी होती ह । जो कन्या सूक्ष्म और तुग नासा वाली, मुक्त उदर वाली, सुभ्रू तथा सुवरकेशान्तो वाली होती है, वह वहुप्रजा वाली होती है । जिसकी अगुलियॉ कमल के सदृश सहित और

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१०-४११ ।

२. वही, पृ० ४११-४१२ ।

कान्तिमान् नखो वाली है, वह कन्या सुख को प्राप्त करती है। जिसके आवर्त सम और स्निग्ध हैं और दोनो पार्श्व सुसस्थित है, वह राजपत्नी होती है। विक्रम संस्थित उरु, जंघा और पार्श्व वाली तथा रक्तान्त विशाल नेत्रों वाली कन्या सुख को प्राप्त करती है। मृगाक्षी, मृगजघा, मृगग्रीवा, मृगोदरी और युक्त नामो वाली स्त्री राजपत्नी होती है। जो स्त्री सुन्दर केश और मुख वाली तथा जिसकी नाभि दक्षिण आवर्तो वाली है, वह कुलवर्धिनी होती है। जो नारी कान्त जिह्वा, रक्तोष्ठी और प्रियभाषिणी है, उसे, प्राज्ञ मनुष्य को, वरण करना चाहिए। नीलोत्पल-सुवर्ण के समान आभा वाली और दीर्घ अंगुलियो वाली स्त्री सहस्रो की स्वामिनी होती है। धन-धान्य, आयु, यश, और श्री से युक्त लक्षणसम्पन्न कन्या को प्राप्त कर मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होता है।

[ख] स्त्रियों के अप्रशस्त लक्षण[1]

उर्ध्वप्रेक्षी, अध.प्रेक्षी, तिर्यक् प्रेक्षिणी, उद्भ्रान्त, और विपुलाक्षी ऐसी स्त्रियाँ विचक्षणो के द्वारा वर्जनीय है। जिसके केश लम्बे और रूक्ष है, अवर्णा और गात्र विचित्र हैं, वह कामचारिणी होती है। कामुका, पिंगला, गोरी, अत्यन्त काली, बहुत लम्बी और बहुत छोटी स्त्रियाँ वर्जनीय हैं। जिस स्त्री के ललाट, उदर और स्फिच—ये तीन लटकते रहते है, वह देवर, श्वसुर और पति को मार डालती है। जिसके बगल मे रोमराजि होती है और कटि झुकी हुई रहती है, वह दीर्घायु और दीर्घकाल तक दुःखी रहती है। काकजंघा, रक्ताक्षी, घर्घर स्वरो वाली, बिना सुखो वाली, बिना किसी आशा वाली और नष्ट बान्धवो वाली नारी वर्जित है। जिसका उदर अत्यन्त स्थूल और नीचे की ओर लटकता रहता है, वह अत्यन्त अवश, बहुत पुत्रो वाली तथा दुःखी होती है। जिसका जांघ और मुख-मण्डल बालो से युक्त होता है, वह पुत्र अथवा भाई को भी जार बनाना चाहती है। जिसके दोनो बाहुप्रकोष्ठ बालो से भरे है और उत्तरोष्ठ पर रोम है, वह अपने पति को विनष्ट करने वाली होती है। जिस स्त्री के हाथो, पैरो और दातों के मध्य छिद्र होता है, उसके घर पति द्वारा अर्जित धन नही टिकता। जिस स्त्री के चलने पर उसकी पर्व-

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ४१२-४१३।

संधियों [जोडों] से आवाज होती है, वह दुःख-वहुला होती है और सुख कभी नहीं प्राप्त करती। जिसके पैर की प्रदेशिनी अंगूठे से वडी होती है, वह कुमारी यौवनावस्था में विशेषरूप से जार करती है।

देवता, नदी, वृक्ष, गुल्म के नामों वाली स्त्री वर्जनीय है। जो स्त्री नक्षत्र या गोत्र के नामों वाली होती है, वह अत्यन्त रक्षा किये जाने पर भी मनसा पापाचरण करती है।

उपर्युक्त इन नारियो का वर्जन करना चाहिए।

O

परिच्छेद ७

तिल-विचार[1]

जिस स्त्री के मूर्द्धिन पर सूक्ष्म, स्निग्ध और पद्म के समान वर्ण वाला तिलक (तिल) हो तथा उसका प्रतिविम्व स्तनों के ऊपर पड़ता हो, तो राजा उसका पति होता है ।

जिस स्त्री के शीर्ष पर सूक्ष्म और अजनचूर्ण के समान वर्ण वाला तिल हो तथा जिसका प्रतिविम्वक तिल स्तनों के वीच मे हो, उसका भर्ता सेनापति होता है ।

भ्रुवान्तर मे तिल वाली स्त्री दुश्चारिणी होती है । उसके पाँच पति होते है और वह वहुत अन्न-पान को प्राप्त करती है ।

गण्डस्थल के नासादिक मध्य मे तिल तथा रोमप्रदेश मे उसके प्रतिविम्वक तिल के होने पर वह नारी शोक को प्राप्त होती है ।

जिस स्त्री के कान मे तिल और उसका प्रतिविम्वक तिल त्रिक में होता है, वह वहुश्रुता और श्रुतिधारिणी होती है ।

जिस स्त्री के उत्तरोष्ठ पर तिल और उसका प्रतिविम्बक तिल उर में हो, वह भिन्नसत्या होती है और कष्ट से वृति प्राप्त करती है ।

जिस स्त्री के अधरोष्ठ पर तिल हो और उसका प्रतिविम्वक तिल गुह्य स्थान पर हो, तो वह दुश्चारिणी और मिष्ठान्न-पान की वहुत इच्छा रखने वाली होती है ।

जिस स्त्री के चिवुक पर तिल और साथ ही उसका प्रतिविम्वक दूसरा तिल गुह्य स्थान पर हो, वह दुश्चारिणी होती है और अधिक मात्रा मे मिष्टान्न पान को प्राप्त करती है ।

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३६८ ।

परिच्छेद ८

पिटक-विचारः

चोट लगने या जलने से हुआ व्रण या फोडे आदि का चिह्न (दाग) "पिटक" कहलाता है। ये तिलो के तद्रूप होते है।

स्त्रियो के वामभाग मे होने वाले पिटक शुभ माने गये हैं और पुरुषों के दक्षिण-भागस्थ पिटक अर्थ-साधक होते हैं।

श्वेत वर्ण का पिटक ब्राह्मणो के लिए, क्षतोपम क्षत्रियो के लिए, पीले रंग का वैश्यो के लिए, असित वर्ण का शूद्रो के लिए और म्लेच्छ जाति मे विवर्ण पिटक श्रेष्ठ होता है। सवर्ण पिटक के होने पर राजा महान् होता है। शीर्ष पर होने से धनधान्य, कान्ति एवं सुभगता की प्राप्ति होती है।

अक्षिस्थान का पिटक प्रियदर्शन कराता है, अक्षिभ्रूभाग मे स्थित पिटक शोक और गण्डस्थल का पिटक पुत्रवध की सूचना देता है।

नासागण्ड मे स्थित पिटक पुत्रलाभ कराने वाला होता है। नासाग्र मे पिटक के उत्पन्न होने पर मनुष्य अभीप्सित गन्ध-भोगों को नही प्राप्त करता। उतरोष्ठ और अधरोष्ठ पर होने वाला शुभाशुभ अन्नपान तथा चिबुक और हनुदेश वाला पिटक धन, गाय और श्री को प्राप्त करता है। गले मे स्थित पिटक वाला मनुष्य दान प्राप्त करता है और आभूषण एव पान का भी उपभोग करता है। शिरसधि और ग्रीवा मे स्थित पिटक शिरश्छेदन को प्रकट करता है। शिरमूल और हनु का पिटक धनक्षय, सधि स्थान का पिटक भैक्षचर्या, तथा हृदयस्थित पिटक प्रियसगम का सकेत करता है। पृष्ठ में होने पर दुःखशय्या और अन्नपानक्षय, पार्श्व मे होने पर सुखशय्या, तथा स्तन पर होने वाला पिटक सुतजन्यता को प्रकट करता है। वाहु मे स्थित

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० १८३-१८५।

परिच्छेद ९

वायस-रुतम्[1]

प्रस्थित पुरुष के मार्ग मे आगे कौवा दूध-धारी वृक्ष पर बैठ कर बोलता है, तो अर्थ-सिद्धि का निर्देश करता है। अधिक बढ़े हुए पत्तो वाले वृक्ष पर बैठकर मधुर बोलता है, तो गुड और गोरस से मिश्रित भोजन प्राप्त होता है। यदि अपने शरीर का पैर से मार्जन करता हुआ दिखलाई पडता है, तो पायस और घृत से युक्त भोजन मिलता है। रुक्ष चोच को घिसता हुआ तथा शिर को साफ करता हुआ, फल वाले वृक्ष पर बैठा हुआ कौवा मास-भोजन का निर्देश करता है। सूखे वृक्ष पर बैठ कर रूखा तथा तथा दीन बोलता है, तो बहुत बडा झगडा तथा अर्थ-विनाश करता है। पखो को फड़फड़ाता हुआ कौवा यदि दिखाई दे, तो गमन नही करना चाहिए। यदि रस्सी और लकड़ी को खीचता है, तो भी जाना नही चाहिए। गोबर या सूखी लकडी पर बैठ कर बोलता है, तो कलह और व्याधि को बताता है तथा अर्थ-सिद्धि का बाधक होता है। घडे, थाली तथा आसन पर बैठ कर बोलना, गमन-सूचक है। देव-स्थान और देवोद्यान पर बोलता है, तो अर्थ-लाभ सूचित करता है। यदि वृक्ष के बीच मे वायसी घोसला बनाती है, तो मध्यम वर्षा तथा मध्यम अनाज उत्पन्न होता है। पेड की जड मे, यदि अण्डे देती है, तो बहुत भयानक स्थिति—अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष की सूचना देती है। चार या पॉच बच्चो को जन्म देती है, तो सुभिक्ष की सूचना देती है तथा फलो को प्रदान कराती है।

o

---

१. शार्दूलकर्णावदान पृ० ४०२।

परिच्छेद १०

शिवा-रुतम्[1]

पूर्व की दिशा में, पूर्व की ओर मुँह कर यदि तीन बार शृगाली बोलती है, तो वृद्धि की सूचना देती है। चार बार बोलने पर मंगल का निवेदन करती है। पाँच बार बोलने पर वर्षा की सूचना देती है। छः बार बोलने पर शत्रुचक्र-भय समुत्पन्न करती है। सात बार बोलने पर कलह प्रकट करती है। आठ बार बोलने पर मित्र-समागम की सूचना देती है। निरन्तर बोलते रहने पर शत्रु-भय की सूचना प्रदान करती है।

दक्षिण दिशा में, दक्षिण मुख कर तीन बार यदि, 'अनु-अनु' जैसा शब्द करती हुई बोलती है, तो वह मृत्यु की सूचना देती है। चार बार बोलने पर, प्रिय-समागम और धन-लाभ की सूचना देती है। इसी प्रकार पाँच बार बोलने से भी धन-लाभ होता है। छः बार बोलने पर सिद्धि का फल प्राप्त होता है। सात बार बोलने पर विवाद और कलह का प्रकटन करती है। आठ बार बोलने पर भय की सूचना देती है। निरन्तर बोलते रहने पर घबड़ाहट प्रकट करती है।

पश्चिम दिशा में, पश्चिम की ओर मुँह कर यदि तीन बार बोलती है, तो मृत्यु की सूचना देती है। चार बार बोलने पर बन्धन, पाँच बार बोलने पर वर्षा, छः बार बोलने पर अन्न, सात बार बोलने पर मैथुन, आठ बार बोलने पर अर्थ-सिद्धि और निरन्तर बोलते रहने पर महामेघ की सूचना देती है।

उत्तर की दिशा में, उत्तर की ओर मुँह करके तीन बार बोलने पर, जाने वाले पुरुष का गमन निरर्थक होता है। चार बार बोलने पर राजकुल-

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३९६।

भय, पाँच बार बोलने पर विवाद, छः बार बोलने पर कुशल, सात बार बोलने पर वर्षा, आठ बार बोलने पर राजकुल-दण्ड, और निरन्तर बोलते रहने पर यक्ष, राक्षस, पिशाच, कुम्भाण्ड के भय को प्रकट करती है।

नीचे मुँह करके बोलने पर खजाने की सूचना और ऊपर मुँह करके बोलने पर वर्षा की सूचना देती है। दो-राहो पर, पूर्वाभिमुख होकर बोलने पर अर्थ-लाभ की और दक्षिणाभिमुख होकर बोलने पर प्रिय-समागम की सूचना देती है। दो राहो (मार्गो) पर पश्चिमाभिमुख होकर बोलने पर कलह, विवाद, विग्रह और मरण को प्रकट करती है। कुएँ के ऊपर बोलने से अर्थ की सूचना मिलती है। घास पर बोलने से अर्थ-सिद्धि, बहुत कोमल बोलने पर व्याधि-सूचक, गीत की ध्वनि में बोलने से अर्थ और अनर्थ दोनों की सूचना देती है।

शृगाली प्रस्थित पुरुष के आगे आकर बोलती है तो मार्ग के कल्याण को बताती है और अर्थ-सिद्धि सूचित करती है। मार्ग मे जाते हुए यदि बाँये से आकर दाहिने मुँह होकर बोले, तो अर्थ-सिद्धि और मार्ग-क्षेम को प्रकट करती है। इसी प्रकार बाँये से आकर सामने बोले, तो मार्ग-भय को प्रकट करती है। यदि सेना के प्रस्थान के समय बोलती है और पश्चिम की ओर लौटती है, तो पराजय को प्रकट करती है। सेना के प्रस्थान पर, यदि शृगाली आगे आ कर बोलती है, तो सेना की विजय प्रकट करती है।

o

परिच्छेद ११

पाणि-लेखा[1]

अँगूठे की जड़ के सहारे ऊपर को जाने वाली रेखा ऊर्ध्व-रेखा कही जाती है, जो सुख की सूचिका है। उसी के पास दूसरी ज्ञान-रेखा कही जाती है। इसके पास ही तृतीय रेखा प्रदेशिनी से आगे बढ़ती है, उसे हृदय-रेखा कहा जाता है। अपर्वो मे पर्व हो तो नक्षत्रों का उपद्रव होता है और यदि दुहरी रेखाएँ पर्वों मे हों तो वह व्यक्ति सौ वर्ष तक जीवित रहता है। अँगूठे के नीचे जितनी रेखाएँ हो, उतनी ही सन्तानें होती हैं। जितनी दीर्घ रेखाएँ होगी, उतनी ही दीर्घायु सन्तान होगी। छोटी रेखाओ के होने पर सन्तान स्वल्पायु होती है। अँगूठे की जड मे यव का चिह्न हो, तो रात्रि का जन्म जानना चाहिए और अँगूठे के ऊपर यव का चिह्न होने पर दिन का जन्म जानना चाहिए। अँगूठे की जड मे, यव के चिह्न से मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है। जिस पुरुष के हाथ मे यव, चाप और स्वस्तिक का चिह्न दिखाई देता है, वह धन्य माना जाता है। मत्स्य के चिह्न से धान्य, यव के चिन्ह से धन की प्राप्ति होती है जिस पुरुष के हाथ मे पताका, ध्वजा, शक्ति, तोमर और अंकुश के चिह्न प्राप्त हो, उसे पृथ्वी पति अर्थात् राजा अथवा राजवंश मे उत्पन्न जानना चाहिए। जिसके हाथ मे अत्यधिक रेखाएँ नहीं होती है, वह सदैव पूज्य होता है और सबका प्रिय माना जाता है। जिसके हाथ मे श्याम वर्ण की रेखा हो और वह टूटी हो, तो दु ख देने वाली होती है। जिसके हाथ में तीनो रेखाएँ पूर्ण स्वप्न मे दिखाई देती है, वह महाभोगी, महा-विद्वान् और सौ वर्ष की आयु वाला होता है। उठा हुआ हाथ, माँसल हाथ, लम्बा और मोटा हाथ सदैव धन प्रदाता होता है। देखने मे अच्छा लगने वाला हाथ, सज्जन पुरुषों का होता है। टेढा तथा अस्पष्ट हाथ धूर्त पुरुषो का माना जाता

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३९९।

है । जिन पुरुषों का हाथ रक्त के समान लाल चिकना होता है, वे सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न माने जाते है ।

गरम और लम्बे हाथ वाला पुरुष अच्छे भाग्य वाला और पौरुष-सम्पन्न होता है । जिस हाथ में लघुत्व और शीतलता हो, वह नपुंसक पुरुष का हाथ होता है । जिसके हाथ मे जल के समान स्वच्छ तथा लम्बी रेखा हो और जल के समान बढ़ती गयी हो, साथ ही निम्न स्थान से उन्नत स्थान की ओर गयी हो, वह पुरुष धन को प्राप्त करता है । जिसकी अँगुलियों मे अन्तर न हो तथा जिसके हाथ की रेखाएँ कटी हुई छिन्न-भिन्न हो, ऐसे पुरुष को लक्ष्मी त्याग देती है ।

o

परिच्छेद १२

चिकित्सा-विज्ञान

तत्कालीन चिकित्सा-विज्ञान समुन्नत था। मातंग राज त्रिशंकु ने अन्य सब शास्त्रो के साथ-साथ आयुर्वेद का भी अध्ययन किया था।[१] महासार्थवाह सुप्रिय अरिष्टाध्याय एव वैद्य-मतो का अध्ययन कर सार्थवाह मघ की व्याधि के उपशमार्थ अनेक औषधियों का निर्देश करता है।[२] रोग को "व्याधि" कहते थे।[३] रोग-ग्रस्त होने के लिए "ग्लानः संवृतः"[४] या "ग्लानीभूतः"[५] शब्द प्रयुक्त हुए है। "दिव्यावदान" मे प्रयुक्त कुछ रोगो के नाम ये हैं—दाह ज्वर,[६] कुष्ठ-रोग[७], पिट्टक[८], नेत्र-रोग[९] मारि या मरक[१०]। "मरक" आधुनिक कालरा आदि के समान एक सक्रामक रोग था।

प्रार्थना द्वारा रोग-निवारण मे लोगो का विश्वास था। एक वार "मारि" के फैलने पर निमित्तक उसे देवता, प्रकोप वतलाते है और अधिष्ठान निवासी जनकाय उसे देवताराधन द्वारा शान्त करते है।[११]

---

१. शार्दूलकर्णावदान, पृ० ३२८।
२. सुप्रियावदान, पृ० ६८।
३. कुणालावदान, पृ० २६३।, वीतशोकावदान, पृ० २७७।
४. पूर्णावदान, पृ० १५, १६।
५. मान्धातावदान, पृ० १३०।
६: पूर्णावदान, पृ० १६।
७. नगरावलम्बिकावदान, पृ० ५२।
८ मान्धातावदान, पृ० १३०।
९. चूडापक्षावदान, पृ० ४३४।
१०. रुद्रायणावदान, पृ० ४८७।
११. वही, पृ० ४८८।

पर साधारणतः रोगो की चिकित्सा करने के लिए वैद्य होते थे ।[1]

तत्कालीन चिकित्सा-प्रणाली मे मुख्यतः औषधियो का प्रयोग होता था। इन औषधियों मे मूल, पत्र, गंड, पुष्पादि होते थे।[2]

एक बार राजा अशोक महान् व्याधि से ग्रस्त हो गये। उन के मुख से वमन होने लगा तथा सभी रोम कूपों से अशुचि पदार्थ निकलने लगा। वह किसी भी प्रकार से ठीक नही हो रहा था। तिष्यरक्षिता ने इस रोग का कारण ज्ञात करने के लिए इसी रोग से आक्रान्त एक आभीर को मार कर उस की कुक्षि को विदीर्ण कर देखा कि उस की आँतों में पक्वाशय स्थान पर एक बडा कीडा (कृमि) उत्पन्न हो गया है। वह उस के ऊपर मरिच (मिर्च) पीस कर लगाती है, पर वह नही मरता। इसी प्रकार पिप्पली और शृङ्गवेर का प्रयोग करती है। किन्तु पलाण्डु (प्याज) के लगाने से वह मर जाता है और उच्चारमार्ग से निकल जाता है। वह राजा से पलाण्डु खाने को कहती है और राजा उस का सेवन कर स्वस्थ हो जाते है।[3]

सौर्पारकीय राजा के दाहज्वर से पीड़ित होने पर वैद्यों ने उन्हे गौशीर्षचन्दन का प्रलेप देने का निर्देश किया था।[4]

एक स्थान पर कहा गया है कि वृद्धावस्था के कारण एक ब्राह्मण की नेत्र-ज्योति नष्ट हो गई थी। उस को मार डालने के उद्देश्य से उस की पुत्र-वधुएँ उसे सर्प डाल कर बनाया हुआ 'हिलिमा' 'जोमा' पान करने को देती है। ब्राह्मण उसे पीता है और उस के वाष्प से उसके नेत्र-पटल खुल जाते है और वह भली-भाँति देखने लगता है।[5]

निरन्तर विलाप और अश्रु-पात करते रहने से नेत्रों की ज्योति चली जाती थी। श्रोण कोटिकर्ण के महासमुद्रावतरण के पश्चात् न लौटने पर उस

---

१. पूर्णावदान, पृ० १५।
२. मान्धातावदान, पृ० १३०।, चूडापक्षावदान, पृ० ४२८।
३. कुणालावदान, पृ० २६३-२६४।
४. पूर्णावदान, पृ० १६।
५. चूडापक्षावदान पृ० ४३५।

के माता-पिता शोक के वशीभूत हो रोते रहने के कारण ज्योति-विहीन हो गये थे ।[१]

वेहोश व्यक्ति को होश मे लाने के लिए उस पर जल छिडका जाता था। 'धर्मरुच्यवदान" मे यथार्थ वात का ज्ञान होने पर एक दारक विमूढ एवं विह्वलचित्त हो कर पृथ्वी पर विमूर्छित हो जाता है । तदनन्तर उस की माता जलघट-परिषेक द्वारा उसे अवसिक्त करती है, जिस से कुछ देर के वाद वह पुनः चेतना प्राप्त करता है ।[२]

रोग निवारणार्थ अनेक भैषज्यो का भी प्रयोग होता था ।[३] गर्भ-परिस्रव कराने वाले भैषज्य भी थे ।[४]

स्मरण-शक्ति वढाने वाले भैषज्य का भी उल्लेख हुआ है । पर्वतराज हिमवान् पर सूदया नाम की औपधि प्राप्त होती थी, जिसे घी मे पका कर पान करने से मनुष्य को न भूख लगती थी और न प्यास तथा साथ ही उस की स्मरण शक्ति वढ जाती थी ।[५]

रोग के कारण कभी-कभी सिर के सारे वाल गिर जाते थे ।[६]

रोग से मुक्त हो जाने पर भी वीतशोक गोरस-प्राय आहार का ही सेवन करता था ।[७]

आपन्नसत्त्वा स्त्रियो को, गर्भ की रक्षा एवं सुसवर्धन के लिए वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट आहार दिये जाते थे ।[८]

---

१. कोटिकर्णावदान, पृ० ४ ।
२. धर्मरुच्यवदान, पृ० १५८ ।
३. पूर्णावदान पृ० १५ ।
४. ज्योतिष्कावदान, पृ० १६२ ।
५. सुधनकुमारावदान, पृ० २९६ ।
६. वीतशोकावदान, पृ० २७७ ।
७. वही, पृ० २७७ ।
८. कोटिकर्णावदान, पृ० १ ।

रोगी के मनोरंजन का भी ध्यान रखा जाता था, जिस में वह पड़े-पड़े ऊबने न लगे। शास्त्रबद्ध कथा एवं नानाश्रुतिमनोरथ आख्यायिकाओं के द्वारा सुप्रिय, रुग्ण सार्थवाह मघ का अनुरंजन करता है।[१]

रोगी के सेवा करने वाले परिचारक "उपस्थायक" कहलाते थे।[२] परिचारिका "उपस्थायिका" कहलाती थी।[३]

O

---

१. सुप्रियावदान, पृ० ६८।

२. वीतशोकावदान, पृ० २७७।

३. वही, पृ० २७७।

परिशिष्ट

परिशिष्ट [क]—'दिव्यावदान' में प्रयुक्त सम-उद्धरणों की सूची

परिशिष्ट [ख]—सहायक ग्रन्थ

परिशिष्ट [क]

"दिव्यावदान" में प्रयुक्त सम-उद्धरणों की सूची

(१) गृहपति का वर्णन

"…………गृहपतिः प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महभोगो विस्तीर्णविशाल-परिग्रहो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १; पूर्णावदान पृ० १५; स्वागतावदान पृ० १०४; ज्योतिष्कावदान पृ० १६२; महसोद्गतावदान पृ० १६२; संघरक्षितावदान पृ० २०४; चूडापक्षावदान पृ० ४३६)

(२) सन्तान-प्राप्त्यर्थ देवाराधन

"सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरवासवादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते, तद्यथा आरामदेवता वनदेवता चत्वरदेवता शृङ्गाटकदेवता बलिप्रतिग्राहिकाः। सहजाः सहधर्मिका नित्यानुबद्धा अपि देवता आयाचते।"

(कोटिकर्णावदान पृ० १; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

(३) सन्तान की उत्पत्ति में त्रिपुटी का योग

"अपि तु त्रयाणां स्थानाना संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च। कतमेषां त्रयाणाम्? मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ। माता चास्य कल्या भवति ऋतुमती च। गन्धर्वः प्रत्युपस्थितो भवति। एषां त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

(४) स्त्रियों के पंच आवेणिक-धर्म

'पञ्चावेणीया धर्मा एकत्ये पण्डितजातीये मातृग्रामे। कतमे पञ्च?

रक्तं पुरुषं जानाति विरक्तं जानाति। कालं जानाति ऋतुं जानाति। गर्भमवक्रान्तं जानाति। यस्य सकाशाद्गर्भमवक्रामति तमपि जानाति। दारकं जानाति, दारिकां जानाति। सचेद्दारको भवति, दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति। सचेद्दारिका भवति, वामं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १; सुप्रियावदान, पृ० ६२; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

(५) गर्भिणी का आहार-विहार

"आपन्नसत्त्वां विदित्वा उपरिप्रासादतलगतामयन्त्रितां धारयति तिक्ताम्ललवणमधुरकटुकषायविवर्जितैराहारैः। हारार्धहारविभूषितगात्रीमप्सरसमिव नन्दनवनचारिणीं मञ्चान्मञ्चं पीठात्पीठमनवतरन्तीमधरिमां भूमिम्। न चास्याः किंचिदमनोज्ञशब्दश्रवणं यावदेव गर्भस्य परिपाकाय।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १; सुप्रियावदान, पृ० ६२; स्वागतावदान, पृ० १०४; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

(६) उत्पन्न पुत्र का शारीरिक वर्णन

"दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्णललाट उच्चघोणः संगतभ्रूस्तुङ्गनासः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः।"

(सुप्रियावदान, पृ० ६२; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६; माकन्दिकावदान, पृ० ४५२)

(७) जातकर्म एवं नामकरण

"तस्य ज्ञातयः संगम्य समागम्य त्रीणि सप्तकानि एकविंशतिदिवसानि विस्तरेण जातस्य जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापयन्ति—किं भवतु दारकस्य नामेति।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० २; पूर्णावदान, पृ० १६; सहसोद्गतावदान, पृ० १८६, १६२; सुधनकुमारावदान, पृ० २८७; माकन्दिकावदान, पृ० ४५२)

(८) शिशु का लालन-पालन

"..............अष्टाभ्यो धात्रीभ्योऽनुप्रदत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्लदस्थमिव पङ्कजम् ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० २; पूर्णावदान, पृ० १६; मैत्रेयावदान, पृ० ३५; सुप्रियावदान, पृ०६३; स्वागतावदान, पृ० १०४; सुधनकुमारावदान, पृ० २८७)

(९) बालक की शिक्षा

"यदा महान् सवृत्तस्तदा लिप्यामुपन्यस्तः । संख्यायां गणनायां मुद्रायामुद्धारे न्यासे निक्षेपे हस्तिपरीक्षायामश्वपरीक्षायां रत्नपरीक्षायां दारुपरीक्षायां वस्त्रपरीक्षायां पुरुषपरीक्षायां स्त्रीपरीक्षायाम् । नानापण्यपरीक्षासु पर्यवदातः सर्वशास्त्रज्ञः सर्वकलाभिज्ञ सर्वाशिल्पज्ञः सर्वभूतरुतज्ञः सर्वगतिगतिज्ञः उद्घट्टको वाचकः पण्डितः पटुप्रचारः परमतीक्ष्णनिशितबुद्धिः सवृत्तोऽग्निकल्प इव ज्ञानेन । स यानि तानि राज्ञां क्षत्रियाणां मूर्ध्नाभिषिक्तानां जनपदैश्वर्यस्यामवीर्यमनुप्राप्तानां महान्त पृथिवीमण्डलमभिनिर्जित्याध्यावसतां पृथग्भवन्ति शिल्पस्थानकर्मस्थानानि, तद्यथा-हस्तिग्रीवायां अश्वपृष्ठे रथे त्सरुधनुःषु उपयाने निर्याणेऽङ्कुशग्रहे तोमरग्रहे छेद्ये भेद्ये मुष्टिवन्धे पदवन्धे दूरवेधे शब्दवेधेऽक्षुण्णवेधे मर्मवेधे दृढप्रहारितायाम् । पञ्चसु स्थानेषु कृतावी सवृत्तः ।"

(सुप्रियावदान, पृ० ६३ ; सुधनकुमारावदान, पृ० २८७)

(१०) व्यापारियों द्वारा घण्टावघोष

"....   ......घण्टावघोषण कृतम् यो युष्माकमुत्सहते.........सार्थवाहेन सार्धमशुल्केनातरपण्येन महासमुद्रमवततुँम्, स महासमुद्रमनीयं पण्य समुदानयतु ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ०२; पूर्णावदान, पृ० २०)

(११) कथा का निष्कर्ष

"इति भिक्षव एकान्तकृष्णानामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानां

धर्माणामेकान्तशुक्लो विपाकः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ।"

(कोटिकर्णावदान, पृ० १४; पूर्णावदान, पृ० ३३; मेण्ढकावदान, पृ० ८४; स्वागतावदान, पृ० ११६; ज्योतिष्कावदान, पृ० १७६; सहसोद्गतावदान, पृ० १६४)

(१२) प्रव्रज्या-विधि

"एहि भिक्षो चर ब्रह्मचर्यमिति । स भगवतो वाचावसाने मुण्डः सवृत्तः संघाटिप्रावृतः पात्रकरकव्यग्रहस्तः सप्ताहावरोपितकेशश्मश्रुर्वर्षशतोपसंपन्नस्य भिक्षोरीर्यापथेनावस्थितः ।

एहीति चोक्तः स तथागतेन
मुण्डश्च संघाटिपरीतदेहः ।
सद्यः प्रशान्तेन्द्रिय एव तस्थौ
एव स्थितो बुद्धमनोरथेन ।"

(पूर्णावदान, पृ० २२, २६; ज्योतिष्कावदान, पृ० १७४; सघरक्षितावदान पृ० २११)

(१३) दृष्टसत्य हो कर उदान कथन

"इदमस्माक भदन्त न मात्रा कृतं न पित्रा कृतं न राज्ञा नेष्टस्वजनबन्धुवर्गेण न देवताभिर्न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद् भगवतास्माक तत्कृतम् । उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, प्रतिष्ठापिता वयं देवमनुष्येषु अतिक्रान्तातिक्रान्ताः ।"

(पूर्णावदान, पृ० २६; सहसोद्गतावदान, पृ० १६२; रुद्रायणावदान, पृ० ४७०)

(१४) बुद्ध का शारीरिक वर्णन

"...... ....भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशील्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्र व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् ।"

(ब्राह्मणदारिकावदान. पृ० ४१; स्तुतिब्राह्मणावदान. पृ० ४५; इन्द्रनामब्राह्मणावदान, पृ० ४७; अशोकवर्णावदान, पृ० ८५; तोयिकामहावदान, पृ० ३०१)

(१५) बुद्ध-स्मिति

"ततो भगवता स्मितमुपदर्शितम् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाताः पुष्परागपद्मरागवज्रवैडूर्यमुसारगल्वार्कलोहितकादक्षिणावर्तशङ्खशिलाप्रवालजातरूपरजतवर्णा अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदनिरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्ममवीचिपर्यन्तान् नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूत्वा निपतन्ति । तेनानुगतास्तेषां सत्त्वानां तस्मिन् क्षणे कारणाविशेषाः, ते प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेव भवति-किं नु वयं भवन्त इतश्च्युता आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं (दर्शनं) विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति-न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्ना इति । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः अस्यानुभावेनास्माकं कारणविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकान् देवान् गत्वा त्रायस्त्रिशान् यामांस्तुषितान् निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो देवान् ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभान् शुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् वृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शानकनिष्ठपर्यन्तान् देवान् गत्वा अनित्य दु.ख शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति । गाथाद्वय च भाषन्ते—

> आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
> धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥
> यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
> प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठत. पृष्ठतः समनुबद्धा गच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं व्याकर्तुकामो भवति,

पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते। अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते। नरकोपपत्ति व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते। तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयते। प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते। मनुष्योपपत्ति व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते। बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते। चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते। श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते। प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामंतर्धीयंते यदि अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयंन्ते।"

(ब्राह्मणदारिकावदान, पृ० ४१,४२, अशोकवर्णावदान, पृ० ८६; ज्योतिष्कावदान, पृ० १६३,१६४; पांशुप्रदानावदान, पृ० २३०,२३१)

(१६) बुद्ध का वर्णन

"...... सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैर्ब्राह्मणैर्गृहपतिभिः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः।"

(सुप्रियावदान, पृ० ५८; अशोकवर्णावदान, पृ० ८५; प्रातिहार्यसूत्र, पृ० ८६; कनकवर्णावदान, पृ० १८०; रूपावत्यवदान, पृ० ३०७)

(१७) प्रणिधान सूत्र (विधि)

"... .... यन्मया एवंविधे सद्भूतदक्षिणीये कारः कृतः, अनेनाहं कुशलमूलेन ... ."

(मेण्ढकावदान, पृ० ८३; स्वागतावदान, पृ० ११६)

(१८) पंच पूर्वनिमित्त

"धर्मता खलु च्यवनधर्मणो देवपुत्रस्य पञ्च पूर्वनिमित्तानि प्रादुर्भवन्ति-अक्लिष्टानि वासांसि क्लिश्यन्ति, अम्लानानि माल्यानि म्लायन्ते, दौर्गन्ध मुखान्निश्चरति, उभाभ्यां कक्षाभ्यां स्वेदः प्रघरति, स्वे चासने धृतिं न लभते।"

(मैत्रेयावदान, पृ० ३५; सूकरिकावदान, पृ० १२०)

(१९) सन्तान न होने पर शोक-प्रकटन

"अनेकधनसमुदितोऽहमपुत्रश्च। ममात्ययाद् राजवंशसमुच्छेदो भविष्यतीति।"

(मैत्रेयावदान, पृ० ३५; सुधनकुमारावदान, पृ० २८६)

o

परिशिष्ट [ख]

सहायक ग्रन्थ

(१) संस्कृत, पालि और प्राकृत-ग्रन्थ

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
२. अमरकोश
३. अवदानशतक—जे० एस० स्पेयर
४. अवदानशतकम्—डा० पी० एल० वैद्य
५. अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता
६ अमातकन्तजातक
७. अष्टाध्यायी
८. अंगविज्जा—मुनि पुण्यविजय संपादित
९. कुमारसम्भवम्
१०. कुम्मासपिण्डजातक
११. गिलगित पाण्डुलिपि, जिल्द तीसरी (भाग एक, दो और तीन)
१२ तैत्तिरीयोपनिषद्
१३ दशकुमारचरित
१४. दिव्यावदान—डा० पी० एल० वैद्य संपादित
१५. धम्मपद
१६. निरुक्त
१७. प्रबन्धकोश
१८. पातंजलयोग सूत्र
१९. बार्हस्पत्य स्मृति
२०. महाभारत
२१ यजुर्वेद
२२. रघुवंश
२३ रामायण

२४. ललितविस्तर
२५. वज्रसूची
२६. विष्णुसूत्र
२७. शार्दूलकर्णावदान—प्रो० सुजित कुमार मुखोपाध्याय संपादित
२८. हलायुधकोश
२६ मनुस्मृति
३०. ऋग्वेद
३१. अथर्ववेद

(२) हिन्दी भाषा के ग्रन्थ

१. उत्तर प्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास—प्रो० कृष्ण दत्त वाजपेयी
२. जातककालीन भारतीय सस्कृति—मोहन लाल महतो वियोगी
३. पाणिनिकालीन भारतवर्ष—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
४. पुरातत्त्व निबन्धावली—राहुल सांकृत्यायन
५. प्राचीन भारत के प्रसाधन—श्री अत्रिदेव विद्यालकार
६. बौद्ध-धर्म-दर्शन—आचार्य नरेन्द्रदेव
७. बौद्ध-संस्कृति—राहुल सांकृत्यायन
८. भारतीय सस्कृति का उत्थान—डा० रामजी उपाध्याय
६. रामायणकालीन समाज—शान्ति कुमार नानूराम व्यास
१०. रामायणकालीन सस्कृति—शान्ति कुमार नानूराम व्यास
११. सार्थवाह—डा० मोती चन्द्र
१२. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन—भरतसिंह उपाध्याय
१३. ध्यान-सम्प्रदाय—भरतसिंह उपाध्याय
१४. त्रिपथगा, अक्तूबर १६५६—सं० काशीनाथ उपाध्याय
(बुद्ध-जयन्ती अंक)
१५. भारतीय कला एव सस्कृति—डा० श्याम प्रकाश

(३) अंग्रेजी-भाषा के ग्रन्थ

1. A Sanskrit English Dictionary—Sir M. Williams
2. Buddhist Hybrid Sanskrit Grammar and Dictionary—Franklin Edgerton.
3. Essence of Buddhism with Illustrations of Buddhist Art—P. L Narsu.
4. Glories of India—P. K Acharya
5. Heaven and Hell—B. C. Law
6. Indian Literature, Vol. II—M. Winternitz.
7. Sanskrit Buddhism—G. K. Nariman
8. The Doctrine of Rebirth—Narda
9. The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal—Rajendra-Lal Mitra.
10. The Sanskrit—English Dictionary—V. S. Apte
11. Journal of the American Oriental Society, Vol. 48.
12. Divyavadana (In Roman Script) edited by E. B. Cowell and R. A. Neil.

O